स्वदेश-विदेश-यात्रा

लेखक

सन्तराम, बी० ए०

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड,

प्रयाग—लाहौर

१९४०

मूल्य १)

प्राक्कथन

मनुष्य को चतुर और अनुभवी बनने में जितना देशाटन सहायता देता है उतना केवल पुस्तक-पाठ नहीं। देश-देशान्तर में घूमते हुए विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलने, उनके रहन-सहन, खान-पान, ब्याह-शादी के ढङ्गों को देखने और उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करने से पर्यटक को अपार लाभ होता है। उसका व्यवहार-ज्ञान और सामान्य बुद्धि बहुत बढ़ जाती है। भारतीय विद्यार्थी बड़े परिश्रमी और तीव्र बुद्धिवाले होते हुए भी जो व्यवहार-ज्ञान में पाश्चात्य देशों के विद्यार्थियों का सामना नहीं कर पाते, इसका भी मुख्य कारण यह है कि हमारे विद्यार्थियों को देशाटन का अवसर बहुत कम मिलता है। उनका ज्ञान पुस्तकों तक ही सीमित रह जाता है। इसके विपरीत पश्चिम के विद्यार्थी विश्वविद्यालय की पढ़ाई सम्पूर्ण करने के साथ ही साथ भूमण्डल के एक बड़े भाग की प्रदक्षिणा भी कर लेते हैं। पुस्तकों के पाठ से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह बासी ज्ञान है। वास्तविक और टटका ज्ञान तो देश-देशान्तर में घूमकर प्रकृति का अध्ययन करने से ही उपलब्ध हो सकता है।

हम भारतीयों को देशाटन में बहुत कम रुचि है। इसी लिए हमारी भाषा में इस विषय पर बहुत ही कम पुस्तकें मिलती हैं। जो मिलती भी हैं उनमें भी अधिकांश दूसरी भाषाओं का ही अनुवाद है। उनके लेखकों का दृष्टिकोण भारतीय नहीं। हिन्दी-साहित्य के इसी अभाव को

पूर्ति के उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक तैयार की गई है। इसमें सभी बातें भारतीय दृष्टि से लिखी गई हैं। यह किसी दूसरी पुस्तक का अनुवाद नहीं, वरन् अपनी आँखों देखी बातों का वर्णन है। इसमें काश्मीर और कुल्लू की यात्रा का वृत्तान्त तो मैंने लिखा है और आस्ट्रेलिया का श्रीमती बहन रामेश्वरी जी नेहरू ने। बहन जी ने न केवल आस्ट्रेलिया की ही यात्रा की है वरन् वे योरप और रूस में भी ख़ूब भ्रमण कर चुकी हैं। वे लन्दन और जनेवा में एकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय समितियों में काम कर चुकी हैं। उन देशों में उन्होंने भारतीय समस्याओं पर अनेक व्याख्यान भी दिये हैं। सन् १९३१ में उन्हें राष्ट्र-संघ (लीग आव नेशन्स) ने बुलाया था। उनका अधिकांश समय समाज-सुधार के कार्यों में व्यतीत होता है। इसलिए आपका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा है।

इस पुस्तक के पाठ से यदि हमारे तरुण-समाज में देशाटन-द्वारा अपने अनुभव एवं व्यवहार-ज्ञान को बढ़ाने की रुचि उत्पन्न हो सकी तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

कृष्णनगर,
लाहौर

—सन्तराम

विषय-सूची

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

स्वदेश-विदेश-यात्रा

काश्मीर-यात्रा

भिन्न भिन्न धर्मों के ग्रन्थों में मरने के बाद जिस स्वर्ग के मिलने का वर्णन मिलता है वास्तव में उसका कोई अस्तित्व है भी, यह कहना बड़ा कठिन है। परन्तु यदि इसी जन्म में स्वर्ग देखना हो, तो काश्मीर जाइए। अपनी मनोहर दृश्यावली और नैसर्गिक विभूति के कारण काश्मीर एक आश्चर्य भूमि है। हिम से सदा ढके रहनेवाले गिरि-शृङ्ग, चील और देवदारु के घने जङ्गलों से हरी-भरी पर्वत-मालायें, दिगन्त-व्यापी श्यामल वनराजि, मखमल के समान कोमल लम्बी घास की विस्तीर्ण चरागाहें, नृत्य करते हुए झरने, गाती हुई सरितायें, मीठे जल के सरोवर, साँप के सदृश बल खाते हुए नाले, गगन-चुम्बी सफ़ेदे के पेड़ों की पङ्क्ति-बद्ध सुन्दर सड़कें, स्वादिष्ट फलों और मनोहर पुष्पों की रम्य वाटिकायें, इन सब चीज़ों का अपूर्व सङ्गम जैसा काश्मीर में मिलता है, वैसा संसार में किसी भी दूसरी जगह नहीं मिलता।

नाम

काश्मीर दो अक्षरों से बनता है—का, अर्थात् पानी और अ
अर्थात् सुखाई हुई। 'कहते हैं किसी स्मरणातीत युग में यह प्र
जलमग्न था। उस समय उसका नाम 'सतीसर' था। उस सरोवर
महादेव-पत्नी गौरी अपनी सुन्दर नौका में बैठकर विहार किया क
थीं। पीछे से जलद् भूदेव नामक असुर को निकालने के लिए व
मूला के निकट से सारा जल निकाल कर कश्यप ऋषि ने भूमि सु
दी। इसलिए इसका नाम 'कश्यपमर' या 'कश्यपपुर' हो गया। व
कालान्तर में काश्मीर बन गया। उणादि कोश के आठवें अध्याय
काश्मीर उस भूमि का नाम बताया गया है जिसकी शासन-प्रणा
बड़ी कठिन हो।

काश्मीर-सुषमा

काश्मीर के इतिहास, राजतरङ्गिणी, का लेखक कल्हन लिखता
कि काश्मीर के समान रत्न-गर्भा धरती तीनों लोकों में दूसरी व
नहीं। इसका कुङ्कुम, इसकी घाटी, इसके हिमाच्छादित पर्वत स
अनुपम हैं।

श्री० वी० सी० स्काट ओ कॉनर ने "चार्म्ज़ आफ़ काश्मीर" अथ
'काश्मीर की मनोहरता' नामक एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखी है
उसके आरम्भ में आपने काश्मीर के सौन्दर्य के सम्बन्ध में बड़े व
पर्यटकों, लेखकों और सम्राटों के वाक्य उद्धृत किये हैं। उस
सबसे पहले लैटिन भाषा के ये तीन शब्द हैं—

Hominum Divomque Voluptas

इन शब्दों का आशय सम्राट् जहाँगीर ने स्वलिखित "तुज़्के जहाँगीरी" में इस प्रकार, फ़ारसी में प्रकट किया है—

"कश्मीर बाग़े अस्त, हमेशा बहार। या क़िला अस्त
आहनी हिसार। बादशाहाँ रा गुलशने अस्त
इशरत अफ़ज़ा। व दर्वेशाँ रा ख़िलवत-कदह
दिलकुशा। चमनहाए ख़ुश, आबशारहाय दिलकश।"

अर्थात् काश्मीर एक वाटिका है जिसमें सदा वसन्त रहता है। या दुर्ग है जिसकी लोहे की दीवारें हैं। सम्राटों के विलास को बढ़ानेवाली फुलवाड़ी है। तपस्वियों के लिए मन को प्रफुल्लित करनेवाला एकान्त है। उसकी पुष्पवाटिकायें प्रफुल्लित और जलप्रपात मनोहारी हैं।

कल्हन लिखता है—

काश्मीर हिमाचल का गर्भ है। काश्मीर की विद्वत्ता तथा शिक्षा-प्रणाली, ऊँची अट्टालिकायें, केसर, बर्फ़ानी पानी और फल ऐसे पदार्थ हैं जिनकी बहुलता स्वर्ग-लोक में भी होनी असम्भव है। ग्रीष्म में भगवान् भास्कर भी मन्द रूप से चमकते हैं, जिससे काश्मीर की धरती बनानेवाले कश्यप ऋषि की लीला शोभायुक्त रहे।

प्रसिद्ध फ़्रेंच पर्यटक फ़्रांसिस बरनियर काश्मीर को उत्तराखण्ड का स्वर्ग कहता है। उसी की प्रति-ध्वनि जहाँ
शेर में मिलती है—

अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीन अस्त।
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।

अर्थात् यदि मर्त्यलोक में कोई स्वर्ग है तो यही काश्मीर है, यही श्मीर है।

फ़ारसी कविवर उरफ़ी कहता है—

हर सोख़्ता जाने कि बकश्मीर दर आयद।
गर मुरग़े कबाब अस्त कि बा बालो पर आयद।

भावार्थ—जो कोई जला-सूखा प्राणी काश्मीर में आये, यदि भूनी ई चिड़िया हो तो भी उसके रोम और पङ्ख निकल आयेंगे।

फिर जहाँगीर कहता है—

ख़ुरद गन्दुम आदम अज़ जन्नत कशीदन्दश बरूँ।
मनकि ख़ुरदम आशे जौ या रब बकश्मीरम रसाँ॥

भावार्थ—हज़रत आदम ने गेहूँ खाया, उसको स्वर्ग से निकाल या गया। मैं तो जौ का पानी पीता रहा हूँ, हे प्रभो, मुझे काश्मीर पहुँचा।

अज़ शाहे जहाँगीर दमे नज़अ चो जुस्तन्द।
बा ख़्वाहिशे दिल गुफ़्त कि कश्मीर, दिगर हेच।

भावार्थ—सम्राट् जहाँगीर से मृत्यु-समय जो पूछा गया तो र्दिक इच्छा से उसने कहा कि काश्मीर के सिवा सब तुच्छ है।

कुमारी पाइरी लिखती है कि 'काश्मीर वह पावन देवलोक है हाँ प्रकृति के सारे सुन्दर और रम्य रूपों का दर्शन करके मनुष्य सन्नता से जी सकता और मर सकता है। शरत्कालीन हिम की

निर्मलता, ग्रीष्म का दिन पर दिन बदलता हुआ हँसमुख और रुचिर व्यवहार, वसन्त के अन्तिम दिनों का अलौकिक सौन्दर्य्य, पावस में कुहर, बादल और गरजती हुई वर्षा, ये सब ऐसे दृश्य हैं कि मन प्रसन्नता से गद्गद हो जाता है।'

मुग़ल बादशाहों को काश्मीर इतना भाया कि उन्होंने इसे अपनी विलास-भूमि बना लिया। काश्मीर के शालिमार बाग़, निशात बाग़ और नसीम बाग़ ने उनसे हाफ़िज़ शीराज़ी के रुकनाबाद, गुलगश्त और मुसल्ला की याद भुला दी। इस समय भी काश्मीर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए जगद्विख्यात है। वहाँ केवल भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के ही नहीं बरन भूमण्डल के समस्त देशों के यात्री पर्यटन के लिए आते हैं। प्रकृति के ऐसे अलौकिक विभूति-भाण्डार के दर्शनों की लालसा किसे न होगी।

काश्मीर जाने के लिए दो मार्ग हैं—एक रावलपिण्डी से और दूसरा जम्मूँ से। जम्मूँवाला मार्ग अधिक रमणीय है। किराये की दृष्टि से भी वह रावलपिण्डी से सस्ता है। इसलिए हमने इसी मार्ग से जाने का निश्चय किया। रविवार २१ अगस्त १९२७ को प्रातः ७ बजे वेदव्रत और बेटी गार्गी समेत मैं लाहौर से चल पड़ा। वज़ीराबाद में जम्मूँ के लिए गाड़ी बदली और सायङ्काल कोई चार बजे हम जम्मूँ जा पहुँचे। जाति-पाँति-तोड़क मंडल के उपदेशक श्री० भूमानन्द जी सपत्नीक तीन दिन पहले से ही वहाँ पहुँचे हुए थे। वे हमें लिवा ले जाने के लिए स्टेशन पर पधारे थे। उनके साथ हम आर्य-समाज-मन्दिर में चले गये।

जम्मूँ

रेलवे स्टेशन से यह नगर कोई ढाई मील है। रास्ते में तवी नाम की एक छोटी-सी नदी है। उस पर पुल बँधा हुआ है। रास्ता पथरीला है। जम्मूँ पुराना नगर है। कहते हैं कोई पौने पाँच सहस्र वर्ष हुए राजा जम्बूलोचन ने इसे बसाया था। यहाँ की जन-संख्या कोई बत्तीस सहस्र है। यह एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। काश्मीर-नरेश शीत-काल में यहीं निवास करते हैं। यह काश्मीर-राज्य की शीतकालीन राजधानी है। स्वर्गीय सर महाराजा अमरसिंह का बनवाया हुआ सुन्दर राजप्रासाद, अजायब-घर, बिजली-घर, रेशम का कारख़ाना, प्रिंस आव वेल्स कालेज, और रघुनाथ जी का मन्दिर यहाँ की दर्शनीय वस्तुएँ हैं। नगर से कोई डेढ़ मील के अन्तर पर चनाव की एक नहर है। अगस्त में लाहौर में बड़ी गरमी होती है। इसलिए नहर के बर्फ़ानी पानी में स्नान करके हमें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।

जम्मूँ के लोगों का, विशेषतः स्त्रियों का, वेश पञ्जाब से किसी क़दर भिन्न है। स्त्रियाँ चूड़ीदार पायजामा और लम्बी कमीज़ पहनती हैं। लोगों का रङ्ग प्रायः गोरा और शरीर सुन्दर है।

जम्मूँ रेलवे का अन्तिम स्टेशन है। यहाँ से काश्मीर को मोटर जाती है। यहाँ मोटर-एर्जसियाँ हैं। उन्हीं के द्वारा मोटर मिलती है। पैदल जाने या घोड़ा-खच्चर किराये पर लेने में जितना ख़र्च पड़ता है, मोटर-लारी में उससे कम में श्रीनगर पहुँच सकते हैं। हमें लारी में अगली सीट के लिए प्रति सवारी केवल ६) देने पड़े। कई बार ऐसा होता है कि लारीवाले लारी में कुछ तो माल भर लेते हैं और

कुछ सवारियाँ बैठा लेते हैं। ऐसी दशा में सवारियों को बहुत आराम रहता है। उनके बैठने और लेटने के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता है। यदि लारी में सवारियाँ ही सवारियाँ भरी हों तो जगह की तङ्गी के कारण कष्ट होता है। संयोग से हमें ऐसी लारी मिल गई जिसमें सब मिलाकर केवल सात सवारियाँ और बाक़ी माल था। इसलिए हमें बड़ा आराम रहा।

२२ अगस्त १९२७ की दोपहर को हम जम्मू से चले। थोड़ी दूर चल कर चढ़ाई आरम्भ हो गई। कुछ मील तक सूखे टीले मिले परन्तु आगे चल कर चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। पहाड़ी सड़क बल खाती हुई चढ़ती है, इसलिए उतराई में, मोटर में बैठी हुई सवारियों, विशेषतः पिछली सीटवालों, के सिर में चक्कर-सा आने लगता है। इससे कइयों को तो वमन भी हो जाता है। रात को हम 'बटोत' नामक पड़ाव पर पहुँचे।

बटोत

रबड़ में छेद (पंकचर) हो गया। वहाँ कोई डेढ़ घण्टा ठहरना पड़ा। तब कहीं पहिया दुरुस्त हुआ। थोड़ी देर बाद फिर पंकचर हो गया। इस बार उसके दुरुस्त होने में कोई दो घण्टे लग गये। इस पथरीली सड़क पर मोटर-लारियों में पंकचर आदि हो जाने से यात्रियों को बड़ा कष्ट होता है। मोटर को दुरुस्त होते घण्टों लग जाते हैं। मैंने मोटर के पास खड़ा रहने की अपेक्षा पैदल चलना पसन्द किया। चलते चलते मैं रामवन आ पहुँचा, परन्तु मोटर अब तक भी न पहुँची।

रामवन

रामवन में चनाब नदी पर पुल बँधा है। पुल के दोनों ओर पड़ाव है। खाने-पीने की वस्तुएँ मिल जाती हैं। मिठाई और चूल्हे की रोटी की दूकानें भी हैं। स्नान करने के लिए एक सुन्दर झरना है। हमने यहीं स्नान करके भोजन किया।

पीर पंचाल

दोपहर हो गई थी। भोजन के बाद हम फिर मोटर में सवार हुए। अब मोटर 'पीर पंचाल' नामक पर्वत पर चढ़ने लगी। पीर पंचाल की गिरिमाला जम्मूँ को काश्मीर से अलग करती है। काश्मीर के गिर्द यह पहाड़ी दीवार है जो प्राचीर का काम देती है। इसको लाँघ कर काश्मीर की घाटी आती है। पर्वत की चढ़ाई में विशेष आनन्द आता था। अभी गरमी के मारे व्याकुल हो रहे थे कि दूसरे ही घण्टे में पर्वत की चोटी पर सरदी से काँपने लगे। टेढ़ी-मेढ़ी सड़क

में बल खाती हुई लारी जब किसी निचली जगह पर चली जाती थी तो गरमी के कारण कपड़े उतारने को जी चाहता था, परन्तु कुछ ही देर बाद जब वह किसी गिरि-शिखर पर दौड़ने लगती थी तो शीतल पवन के स्पर्श से शरीर सिकुड़ जाता था। इस पर्वत पर वायु बड़े वेग से चला करती है। कहते हैं, कभी कभी तो यह यात्रियों को भी उड़ा कर चट्टान के नीचे फेंक देती है। सायङ्काल कोई पाँच बजे के लगभग हमारी लारी पीर पंचाल को लाँघ कर काश्मीर की घाटी में पहुँची।

काश्मीर की उपत्यका

इस स्थान से काश्मीर की राजधानी कोई पचास मील आगे है और जेहलम नदी का स्रोत, वैरीनाग, कोई तीन मील दहिनी ओर रह जाता है। अब पहाड़ समाप्त हो जाते हैं और एक बड़ा सुन्दर मैदान आरम्भ होता है। यही काश्मीर है। काश्मीर का सौन्दर्य ही इसमें है कि पर्वतों की इतनी बड़ी ऊँचाई पर पचासी मील का चौरस मैदान है। जम्मू से चलकर यहाँ तक, कोई डेढ़ सौ मील, हम ऊँचे-नीचे और ऊबड़-खूबड़ पहाड़ी मार्ग में से ही होकर आये हैं। इसलिए दो दिन के बाद साफ़-सुथरा खुला मैदान देखकर मन अति प्रसन्न हुआ। अब मोटर ख़ूब ज़ोर से दौड़ने लगी और कोई छः बजे सायङ्काल अनन्त नाग जा पहुँची। यह काश्मीर की एक तहसील है और हमारे मार्ग में पहला काश्मीरी नगर है। मोटर को अपना माल यहाँ उतारना था। इसलिए कुछ देर यहाँ ठहरना पड़ा।

अनन्त नाग से जो सड़क श्रीनगर को गई है, उसके समान सुन्दर दूसरी कोई सड़क संसार में मिलनी कठिन है। इसके दोनों ओर गगन-स्पर्शी सफ़ेदे (पापलर) के वृक्ष सुव्यवस्थित रूप से पंक्ति-बद्ध खड़े हैं। इनके सफ़ेद तने और हरी-भरी चोटियाँ बड़ा ही मनोहर दृश्य उपस्थित करती हैं। ऊपर स्वच्छ नीलाकाश है और नीचे धूलि-रहित निर्मल समतल भूमि। ऐसा अलौकिक दृश्य देखकर आत्मा तृप्त हो जाती है। सफ़ेदों की यह सड़क श्रीनगर से भी ३५ मील परे बारामूला तक इसी प्रकार चली गई है।

अनन्त नाग से कोई एक मील आगे 'खनबल' नाम का स्थान है। यहाँ काश्मीर-नरेश का विश्रान्ति-गृह है। इसके बाहर एक पट्टे पर सूचना लिखी हुई है—मोटर धीरे चलाइए, महाराज विश्राम कर रहे हैं।

अब हमारा मार्ग जेहलम नदी के किनारे किनारे है। अनेक लोग यहाँ से नाव में बैठकर श्रीनगर जाते हैं। इसमें किराया तो कम परन्तु समय अधिक लगता है। साँझ को नाव में बैठें तो दूसरे दिन सवेरे श्रीनगर पहुँचेंगे।

अवन्तिपुर

श्रीनगर से १६ मील दूर अवन्तिपुर के खँडहर हैं। कुछ वर्ष हुए इनकी खोदाई हुई है। खोदने से पुराने मन्दिर और मकान निकले हैं। इस नगर को ९वीं शताब्दी में राजा अवन्तिवर्मा ने बसाया था।

केसर की क्यारी

मोटर की सड़क पर श्रीनगर से कोई आठ मील इधर पाँपुर नामक गाँव है। काश्मीर की समूची उपत्यका में यहाँ की भूमि केसर की खेती के लिए विशेषरूप से उपयुक्त है। केसर बोने के लिए सड़क के दोनों ओर कई मील तक खेतों में क्यारियाँ बनी हुई थीं। केसर का बीज कचालू की तरह एक गाँठ होता है। उसे भूमि में गाड़ देने से उग कर घास के ऐसे लम्बे लम्बे पत्ते निकल आते हैं। उगने को तो केसर पञ्जाब के दूसरे स्थानों में भी उग आता है, परन्तु उसमें केसर नहीं लगता।

श्रीनगर

रात्रि को कोई साढ़े आठ बजे के लगभग हम श्रीनगर पहुँचे। यहाँ पहले कभी आना न हुआ था, इसलिए ठहरने की कोई जगह मालूम न थी। दिन होता तो आर्य-समाज-मंदिर में चले जाते। इस समय उसका पता लगाना कठिन था। सौभाग्य से मोटरों के अड्डे के बिलकुल समीप सिक्खों का गुरुद्वारा तथा धर्म्मशाला थी। वहीं हम चले गये। धर्मशाला के 'भाईजी' बहुत सज्जन पुरुष थे। आपने कृपापूर्वक हमें रहने के लिए स्थान दे दिया।

सिक्ख-धर्म्मशाला

धर्म्मशालाओं, मंदिरों और सरायों में जो यात्री आकर ठहरते हैं, रात को उनका नाम-धाम सब लिख लिया जाता है। यह डायरी कदाचित् पुलिस को दिखानी पड़ती है। जो शिवालय और धर्म्म-

शालायें सनातन-धर्म्मी हिन्दुओं की हैं उनमें यात्री से जाति-पाँति जरूर पूछी जाती है। परन्तु सिक्ख-धर्म्म, कम से कम सिद्धांत रूप से, जन्म से जाति-पाँति को नहीं मानता। रात्रि को जब धर्म्मशाला में 'भाईजी' (पुजारी) हमसे नाम-धाम पूछने आये, तो मेरे मन में आया कि देखूँ, भाईजी यात्रियों से 'जाति' भी पूछते हैं या नहीं। परन्तु मुझे यह देखकर परम प्रसन्नता हुई कि उन्होंने किसी से भी उसकी जाति या वर्ण नहीं पूछा। तब मैंने उनसे कहा—भाईजी, दूसरे मंदिरों में तो वहाँ के प्रबंधक यात्रियों से उनकी जाति-पाँति भी पूछा करते हैं; आपने क्यों नहीं पूछी? भाईजी बोले, सिक्ख-धर्म्म जात-पाँत नहीं मानता।

हमने बड़े सुख से रात्रि व्यतीत की। ब्राह्ममुहूर्त्त में सिक्ख लोग अपने धर्म्म-ग्रन्थ से "आसा की वार" का पाठ किया करते हैं। हम लोग अभी लिहाफ़ों में पड़े लेट रहे थे कि गुरुद्वारे में स्त्री-पुरुषों की एक बहुत बड़ी संख्या उपस्थित हो गई। भजन का आधा पद पुरुष गाते थे और दूसरा आधा स्त्रियाँ। इस पुण्य मुहूर्त्त में, पुरुषों के गम्भीर नाद के साथ भक्तिमयी देवियों का मृदुल-मञ्जुल स्वर भजन के प्रभाव को बहुत अधिक बढ़ा रहा था। सारी 'साधु-सङ्गति' भगवद्-भजन में तल्लीन जान पड़ती थी।

आर्य-समाज-मन्दिर

यद्यपि इस धर्म्मशाला में यात्री आठ दिन तक रह सकता है, तथापि हमने सवेरे यहाँ से चला जाना ही अच्छा समझा। इसलिए
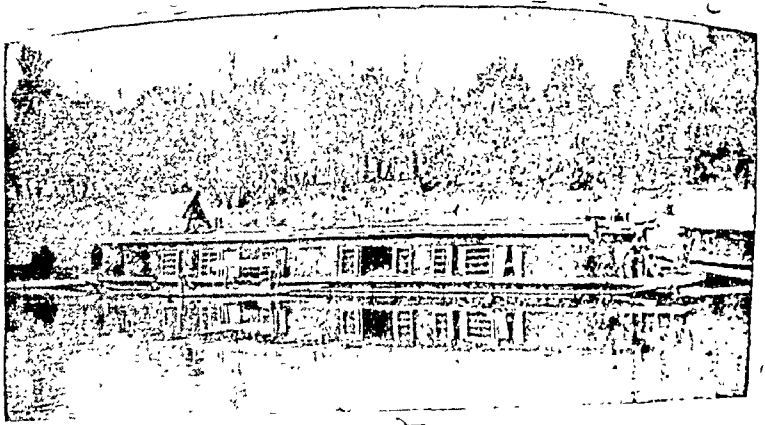
हाउसबोट

नगर का दृश्य (श्रीनगर)

शौच और स्नानादि से निवृत्त होकर हम आर्य-समाज-मन्दिर (गुरुकुल-विभाग) हुजूरी-बाग में चले गये। समाज-मन्दिर नगर से बाहर एक स्वच्छ, सुन्दर स्थान में बना है। मन्दिर के हाते में नाशपाती के पेड़ लगे हुए हैं। नल में हर समय पानी रहता है। इससे स्नान का बड़ा आराम है। जिन नगरों में पानी के नल हैं, वहाँ पानी की कमी की प्रायः शिकायत रहती है। श्रीनगर में भी इसी जल-कष्ट के कारण बहुत से लोग समाज-मन्दिर में स्नान करने आते थे। मन्दिर में मकानों के दो ब्लाक हैं। दोनों बड़े साफ-सुथरे हैं। बिजली यहाँ बहुत सस्ती है। यहाँ मीटर के हिसाब से नहीं, बरन बल्ब (लेम्प) के हिसाब से बिजली का किराया लिया जाता है। इसलिए ये लेम्प प्रायः दिन-रात बराबर जला करते हैं। किसी को इनके बुझाने की चिन्ता नहीं।

मन्दिर के साथ ही सामने एक बड़ा सार्वजनिक क्रीड़ा-क्षेत्र है। दो मिनट की दूरी पर चुनार के पेड़ हैं। इनकी छाया बड़ी घनी और ठंडी होती है। ग्रीष्म-ऋतु में भी इनके नीचे बैठने से सरदी मालूम होने लगती है। चुनार के पत्ते और फल अरिण्डी के ऐसे होते हैं, परन्तु ऊँचाई पीपल से कम नहीं। कहते हैं, वास्तव में यह ईरान का पेड़ है। मुग़ल-सम्राट् इसे भारत में लाये थे।

हौस-बोट

धनी लोगों के लिए श्रीनगर में ठहरने का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। उनके लिए पोलो ग्राऊंड के पास नीडो होटल, अमीरा कदल में

खालसा हिन्दू-होटल, काश्मीर-हिन्दू-होटल और मुसलिम सता होटल है। किराये पर बँगले भी मिलते हैं। बढ़िया से बढ़िया 'हौस-बोट' लिये जा सकते हैं। प्रायः धनी लोग 'हौस-बोट' में ही रहते हैं। हौस-बोट एक नाव होती है जो घर का काम देती है। इसकी चौड़ाई १०-१५ फ़ुट और लंबाई भिन्न भिन्न होती है। इसमें घर की सभी बातें होती हैं। अलग अलग कमरे होते हैं। उनमें दरवाज़े और खिड़कियाँ लगी होती हैं। बहुत से हौस-बोट नमदों, गालीचों, फुलवारियों, चित्रों, मेज़-कुरसी, और पलंगों से ख़ूब सुसज्जित हैं। कइयों में पुरानी पुस्तकें और पत्रिकाएँ भी रक्खी हुई हैं। अकसर एकतल्ले हैं। कुछ की छत पर भी कुरसी बिछा कर बैठने के लिए स्थान है। रात्रि को उनमें बिजली का प्रकाश होता है। प्रत्येक हौस-बोट के साथ एक रसोई बनाने के लिए नाव और एक इधर-उधर जाने के लिए 'शिकारा' नाम की किश्ती रहती है। हौस-बोट के किराये की दर १०० से ४०० रुपया मासिक तक है। जैसा जैसा हौस-बोट वैसा वैसा किराया। नाव को खेकर नदी, झील या छोटे नालों में ले जानेवाले नौकरों का वेतन इस किराये से अलग है। 'विक्टरी' नाम का हौस-बोट दर्शनीय है।

हौस-बोटों के सिवा बहुत से लोग तम्बू लगाकर भी रहते हैं। तम्बू किराये पर श्रीनगर में मिल जाते हैं।

परन्तु ग़रीब या साधारण स्थिति के लोगों के लिए श्रीनगर में रहने का प्रबन्ध अग्रलिखित स्थानों में है। वहाँ वे एक सप्ताह तक मुफ़्त ठहर सकते हैं—

१—सनातन-धर्म्म-प्रताप-भवन, अमीरा कदल।

२—सिक्ख-धर्म्मशाला, अमीरा कदल। पहली रात इसी में हम ठहरे थे।

३—आर्य-समाज-मन्दिर (गुरुकुल-विभाग), हुजूरी बाग़।

४—आर्य-समाज-मन्दिर (कालेज-विभाग), हुजूरी बाग़।

५—दशनामी अखाड़ा, अमीरा कदल।

६—नारायणमठ, रेशम के कारख़ाने के निकट, केवल बंगाली साधुओं के लिए।

७—दुर्गानाग-मन्दिर, शंकराचार्य पर्वत के नीचे। केवल साधुओं के लिए।

८—रामबाग़, बाढ़ का पानी ले जानेवाली नहर के निकट, अमीरा कदल। केवल साधुओं के लिए।

बदरी-आश्रम

श्री भूमानन्दजी आर्यसमाज-मन्दिर में ही ठहर गये। परन्तु वहाँ बहुत से यात्री पहले से ही ठहरे हुए थे, और जगह की तङ्गी थी। समाज-मन्दिर से कोई ८ मिनट की दूरी पर बदरी-आश्रम है। यह एक धर्मार्थ धर्म्मशाला है। स्वर्गीय श्री बदरीनाथ की विधवा धर्म्म-पत्नी ने बनवाई है। दोमंज़िला है। बहुत से कमरे हैं। थोड़े से कमरों में रसोई-घर भी साथ हैं। शेष के लिए एक जगह तीन-चार चूल्हे बने हुए हैं। लोग बारी बारी से भोजन बना लेते हैं। बड़े आराम की जगह है। चटाइयाँ और चारपाइयाँ किराये पर मिल जाती हैं।

परन्तु इन चारपाइयों में खटमल बहुत हैं। वे रात को बहुत सताते हैं। हमारे मंडल के प्रधान श्रीमान् भाई परमानंद जी इसी आश्रम में सपरिवार ठहरे हुए थे। उन्हीं के परामर्श से मैं भी वहीं चला गया। परंतु रसोई और स्नान का प्रबन्ध समाज-मन्दिर में ही रक्खा क्योंकि बदरी-आश्रम में पानी बहुत कम आता था।

अब हमने श्रीनगर की सैर करने की ठानी। श्रीनगर जेहलम नदी के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। प्राकृतिक रूप से यहाँ नदी में इतना पानी नहीं कि बड़ी बड़ी नावें इसमें चल सकें। इसलिए कृत्रिम रीति से बाँध बाँधकर और नदी को गहरा खोदकर यहाँ इस क़दर पानी इकट्ठा कर दिया गया है कि नावें सुगमतापूर्वक चलती हैं। प्राकृतिक ढलान न होने से पानी बहुत धीरे धीरे चलता है और नदी सदा भरी रहती है। जैसे दूसरे नगरों में सड़कें रहती हैं वैसे श्रीनगर में इस नदी से निकाली हुई नहरें हैं। वे प्रत्येक मुहल्ले और बाज़ार में जाती हैं। इन्हीं के रास्ते लोग नाव में बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं। जो काम दूसरे नगरों में टाँगा देता है वही यहाँ 'शिकारा' अर्थात् नाव देती है। नाव में रखकर लोग माल बेचते हैं, तरकारियाँ लाते हैं, ईंटें और लकड़ी ढोते हैं, और घर बनाकर रहते हैं।

नदी के वार-पार जाने के लिए सात पुल बने हुए हैं। पुल को काश्मीरी भाषा में 'कदल' कहते हैं। इन पुलों के नाम ये हैं—

पहला पुल या अमीरा कदल। यही बाज़ार सबसे अच्छा और रौनक़दार है।

दूसरा पुल या हब्बाकदल।

तीसरा पुल या फ़तेहकदल।

चौथा पुल या ज़ैनाकदल।

पाँचवाँ पुल या अलीकदल।

छठा पुल या नवाकदल।

सातवाँ पुल या सफाकदल।

श्रीनगर की ऊँचाई समुद्रतल से ५,२०० फ़ुट है। परन्तु देख से ऐसा प्रतीत होता है मानो हम पहाड़ पर नहीं, लाहौर या प्रया में हैं। यहाँ उसी तरह धूल और दुर्गन्धि उड़ाती हुई मोटरें दौड़त हैं; वैसे ही वायु-मण्डल धुएँ से भरा रहता है। अमीरा कदल को छो कर शेष सब मुहल्लों के घर अत्यन्त गन्दे हैं—इतने गन्दे हैं कि नाव पर कपड़ा दिये बिना गली में से होकर निकलना कठिन है। काश्मी का जितना सौन्दर्य है वह श्रीनगर से बाहर है, भीतर कुछ भी नहीं। लोग ९० प्रतिसैकड़ा से भी अधिक मुसलमान हैं। कोई नौ सौ वर्ष पहले सारा काश्मीर हिन्दू था। परन्तु एक हिन्दू-पण्डित की भूल के कारण उसे मुसलमान बनना पड़ा। आप पूछेंगे वह कैसे! सुनिए—

काश्मीर का मुसलमान होना

सिकन्दर नाम के एक सिदियन राजा ने काश्मीर पर अधिकार प्राप्त कर लिया। यह शक जाति का राजा न हिन्दू था और न मुसलमान। परन्तु उसका झुकाव हिन्दू-धर्म्म की ओर था। कहते हैं, वह एक पण्डित से रोज़ गीता की कथा सुना करता था। एक दिन कथा में अग्र लिखित श्लोक आया—

श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

कथावाचक पण्डित ने इसका अर्थ करते हुए कहा—"दूसरे उत्तम धर्म्म से अपना गुणहीन धर्म्म भी कल्याण का देनेवाला है अपने धर्म्म में ही मरना अच्छा है और दूसरे का धर्म्म भयंकर है।

सिकन्दर चौंक पड़ा। उसने ब्राह्मण से श्लोक का अर्थ दुबा करने को कहा। ब्राह्मण ने फिर वही शब्द दुहरा दिये। तब सिकन्द ने पूछा, क्या इसका आशय यह है कि मैं आपके धर्म्म को ग्रहर नहीं कर सकता? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—जी, हाँ, अपने अपने धर्म्म में रहना ही अच्छा है, क्योंकि भगवान् ने कहा है—

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।"

यह सुनते ही सिकन्दर की विचार-धारा एक-दम बदल गई। वह हिन्दू-धर्म से निपट निराश हो गया। विवश होकर उसने निश्चय किया कि सवेरे जो व्यक्ति मुझे सबसे पहले दृष्टिगोचर होगा, मैं उसी का धर्म्म ग्रहण करूँगा। दूसरे दिन सवेरे उठकर वह अपने राजभवन के झरोखे में बैठ गया। अकस्मात् उसकी दृष्टि सबसे पहले एक बुड्ढे पर पड़ी। वह मिट्टी का एक लोटा लिये जा रहा था। उसने इस बुड्ढे को अपने पास बुलाया और पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"बुलबुलशाह।"

"तुम कौन हो?"

"मुसलमान।"

"क्या तुम मुझे अपने धर्म्म की दीक्षा दे सकते हो ?"

"मेरे लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है कि काश्मीर-नरेश मेरा धर्म्म-भाई बने। इस्लाम का द्वार मनुष्य-मात्र के लिए खुला है।"

बस फिर क्या था। सिकन्दर मुसलमान बन गया। सबसे पहला काम उसने यह किया कि काश्मीरी ब्राह्मणों को बोरियों में बन्द करके जेहलम नदी में डुबा दिया। उसके उद्योग से सारा काश्मीर अल्पकाल में ही मुसलमान हो गया। बुलबुलशाह की क़ब्र अब तक श्रीनगर में मौजूद है। जहाँ ये ब्राह्मण डुबाये गये थे उस स्थान को 'बट मज़ार' कहते हैं।

महाराजा रणवीरसिंह जी ने काश्मीरी पण्डितों से कहा था कि इन मुसलमान भाइयों को शुद्ध करके अपने में मिला लो। उन्होंने 'रणवीर-प्रायश्चित्त-विधि' नाम की एक पुस्तक भी तैयार कराई थी। परन्तु, पण्डितों ने महाराज की बात न मानी। काश्मीरी ब्राह्मण पंजाबी हिन्दू के हाथ का नहीं खायगा, परन्तु काश्मीरी मुसलमान से पानी मँगा कर पी लेगा, उससे चूल्हा जलवा लेगा, और उसके पास रोटी भेज देगा। कारण पूछने पर वह कहता है कि मुसलमान हो गया तो क्या हुआ, है तो यह मेरा भाई ही। कुछ दिन पहले तक यहाँ हिन्दू-मुसलमान सचमुच भाई भाई थे। परन्तु अब तो वहाँ का वायुमंडल भी विषाक्त हो गया है। वहाँ भी हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ गया है। मैंने कई जगह देखा, मुसलमान लड़के हिन्दू के हाथ का लेकर खाने से इनकार कर देते हैं।

काश्मीरी पण्डित

हिन्दू लोग हाथ से काम करना बुरा समझते हैं। इससे वे नी जाति के कहलाने लगते हैं। इसलिए काश्मीर में मेहनत-मज़दूरी औ कला-कौशल का सारा काम मुसलमानों के हाथ में है। काश्मीर ब्राह्मण इन कामों को बुरा समझते हैं। दूकान खोल लेने या लुहार बढ़ई का काम करने से काश्मीरी पण्डित का विवाह होना कठिन हो जाता है। दूकानदारी से दो सौ रुपया मासिक कमानेवाले काश्मीरी पण्डित को कोई लड़की नहीं देगा, परन्तु उसके यहाँ दस रुपया मासिक पानेवाले दूसरे ब्राह्मण का विवाह सुगमता से हो जायगा। कारण, पहला पण्डित दूकानदार है और दूसरा नौकर है; क्या हुआ यदि उसका वेतन दस रुपये है। इस मनोवृत्ति का बहुत भयङ्कर परिणाम हुआ है। काश्मीर में कालेज की शिक्षा प्रायः निःशुल्क है। उससे काश्मीरी पण्डितों में ग्रेजुएटों की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है। उधर रियासत में नौकरियों की संख्या बहुत परिमित है। दूसरे वहाँ भी योग्यता-अयोग्यता का विचार न करके हिन्दू और मुसलमान प्रजा की सापेक्ष संख्या के अनुसार सरकारी नौकरियाँ मिलने का क़ानून बन गया है। तीसरे ये लोग काश्मीर से बाहर जाना पसन्द नहीं करते। ऐसी अवस्था में ग्रेजुएटों की एक बहुत बड़ी संख्या का बेकार रहना अनिवार्य है। इसलिए काश्मीर में आपको २०) मासिक पर नौकरी करते हुए अनेक काश्मीरी पण्डित ग्रेजुएट मिलेंगे।

काश्मीरी पंडितों की आर्थिक दशा बहुत ख़राब है। इससे उनमें

राजयक्ष्मा आदि भयङ्कर रोग बढ़ रहे हैं। नौकरी के सिवा ये लोग और कुछ करना पसन्द नहीं करते। सफ़ेद-पोशी रखना भी ज़रूरी है। इसलिए इनकी भीतरी दशा बहुत शोचनीय है। एक सज्जन ने मुझे बताया कि पण्डितों में सन्तानोत्पत्ति की शक्ति भी बहुत घट गई है और इनकी जन-संख्या दिन पर दिन कम हो रही है।

मैंने काँगड़ा, कुल्लू, मसूरी, डलहौज़ी और कनौर आदि कई पहाड़ी प्रदेश देखे हैं। सब कहीं मैंने नर-नारियों को मैदानी लोगों की अपेक्षा पतला और छोटे क़द का पाया है। मनुष्य ही क्यों, वहाँ की गउएँ भी मैदानी गउओं से छोटी देखी हैं। परन्तु काश्मीर में यह बात नहीं। यहाँ के लोगों का डील-डौल मैदानी लोगों का ऐसा है। स्त्रियाँ और पुरुष कन्धों से लेकर पिण्डलियों तक एक लम्बा चोला पहनते हैं। इसको फिरन कहते हैं। रङ्ग प्रायः सबका गोरा है। संसार में काश्मीरी स्त्रियों के सौन्दर्य का बड़ा बखान है। कोई उन्हें परी समझता है, कोई हूर और कोई अप्सरा। परन्तु विचार-पूर्वक देखने पर हम तो इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सौन्दर्य किसी देश या जाति-विशेष की सम्पत्ति नहीं। भगवान् ने इसका दान सभी जातियों और देशों को किया है। केवल देखनेवाली आँख चाहिए। पेट के बल रेंगनेवाले केंचुए से लेकर नाचनेवाले मोर तक सबमें सौन्दर्य है। किसी एक व्यक्ति या जीव में संसार के सभी गुण नहीं। मोर के पङ्ख सुन्दर हैं तो टाँगें वैसी नहीं। हिरण की टाँगें कुडौल हैं तो सींग मनोहर हैं। इसी प्रकार जातियों की बात है। किसी का रङ्ग काला है तो सूरत बड़ी सुडौल है। कोई गोरा है तो उसकी

क-आँख की बनावट अच्छी नहीं। पञ्जाब की रङ्गत अच्छी र संयुक्त-प्रान्त का ऐसा चञ्चल कटाक्ष नहीं। वङ्ग-रमणी के शरी ी गठन चाहे पञ्जाबी बाला जैसी न हो परन्तु उसका ऐसा रसील ात्त, कोमल और मधुर वाणी, और लावण्य दूसरे प्रान्तों में नह लता। गुर्जर देश की स्त्रियों के ऐसे लम्बे केश, कोमल-क्र ज़ेवर और सुन्दर नेत्र अन्यत्र कहाँ हैं। काश्मीर की भी यही बा । काश्मीर-कामिनी के शरीर की गठन और रङ्गत बहुत अपूर्व न्तु चिह्न-चक्र और नक़श-निवार उतने आकर्षक नहीं। पण्डित कोक ने लिखा है कि काश्मीर-देश की कामिनियाँ बड़ी साफ़-सुथरी, ावती, सुन्दर तथा स्वच्छ वस्त्र पहननेवाली होती हैं। परन्तु हमने श्मीर में इन स्वच्छ और सुन्दर वस्त्रों की शकल तक नहीं देखी। ण्डित परिवारों की ललनायें बेशक 'साफ़-सुथरी और रूपवती' कही सकती हैं, किन्तु अधिकांश मुसलमान रमणियाँ तो सदा मैले-ले और गन्दे कपड़े ही पहने रहती हैं। एक मुसलमान महिला एक बार लिखा था कि काश्मीरी कन्या रूप का उछलता हुआ झरना उसकी इस उक्ति में यथार्थता कितनी है, यह अपनी अपनी ाह की बात है।

श्रीनगर में खाद्य-पदार्थ बहुत सस्ते हैं। रुपये के छः-सात सेर ल, छः सेर गेहूँ का आटा, बारह छटाँक घी, ढाई आने सेर दूध, के पाँच-छः बड़े बड़े बैंगन, बारह-चौदह मूली, डेढ़-दो सेर म का साग, दो बड़ी लौकियाँ, तीन पैसे सेर आलू, टोमेटो और ज, और दो पैसे सेर गाँठगोभी मिल जाती है।

अगस्त के अन्त और सितम्बर के आरम्भ में ही काश्मीर में फलों की बहार होती है। जुलाई और अगस्त में केवल 'गिलास' नाम का एक फल होता है। नाशपाती, वग्गू गोशा, आलू बुखारा, आड़ू और अंगूर बाद में पकते हैं। इसलिए फल खाने की इच्छा रखनेवालों को अगस्त के अन्त में ही काश्मीर आना चाहिए। पहले आने से उन्हें निराशा होगी। इस समय तक वर्षा का ज़ोर भी समाप्त हो चुकता है। पहाड़ पर अधिक वर्षा से मनुष्य तङ्ग आ जाता है। गत वर्ष लगातार पानी बरसते रहने के कारण मुझे चार दिन तक मसूरी में घर के भीतर ही क़ैद रहना पड़ा था। इससे पेट ख़राब हो गया था और मैंने वहाँ से भागना ही उचित समझा था। मेरे और भी कई मित्र मसूरी से इसी कारण बीमार होकर आये थे। परन्तु काश्मीर की यह एक बड़ी विशेषता है कि यहाँ दूसरे पहाड़ी स्थानों की अपेक्षा वर्षा कम होती है। इस पर भी घाटी बड़ी हरी-भरी है। इससे यहाँ रहने का आनन्द और भी बढ़ जाता है।

काश्मीरी फलों में मुझे दो चीज़ें बहुत भाई हैं—एक वग्गू गोशा और दूसरा आलू बुखारा। ये दोनों फल इतने नरम होते हैं और तनिक-सी ठेस लग जाने पर भी इतनी जल्दी सड़ जाते हैं कि काश्मीर से बाहर नहीं जा सकते। परन्तु स्वाद में संसार के बहुत थोड़े फल इनका सामना कर सकते हैं। वग्गू गोशा तीन आने दर्जन और आलू बुखारा डेढ़ आने दर्जन मिल जाता है। काश्मीर का अंगूर अच्छा नहीं होता, परन्तु आड़ू पर्याप्त मोटा और गूदे से भरा हुआ रहता है।

काश्मीर अपने फलों और दृश्यों के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है इसकी एक बड़ी ख़ूबी यह भी है कि यहाँ प्रत्येक प्रकृति के मनुष्य के अनुकूल जल-वायु मौजूद है। बहुत ठण्डी जगह चाहिए तो गुलमर्ग और सुनमर्ग मौजूद हैं। पहाड़ पर लाहौर और प्रयाग का-सा जीवन व्यतीत करना चाहो तो श्रीनगर में रहिए। क्षय-रोग के रोगियों के लिए सूखी और ठण्डी वायु चाहिए तो पहलगाम जाइए। जल-विहार करने की इच्छा हो तो डल और वूलर में हाऊस-बोट ले जाइए। झरने का आनन्द लेना हो तो अच्छवल और मटन में तम्बू लगा लीजिए। वन-विहार और शिकार का शौक़ हो तो लोलाब प्रदेश में निकल जाइए। हिमालय में तपस्या करने की इच्छा हो तो अमरनाथ की यात्रा कीजिए। सारांश यह है कि काश्मीर की घाटी समस्त संसार को दिखलानेवाला दर्पण है।

डल सरोवर

श्रीनगर से साढ़े सात मील की दूरी पर निशात-बाग़ है। निशात-बाग़ का अर्थ आमोद-वाटिका है। कोई तीन सौ वर्ष हुए जहाँगीर के ससुर आसफ़ ख़ाँ ने इसे बनवाया था। गरमियों में रविवार के दिन यहाँ ख़ूब रौनक़ होती है। सहस्रों की संख्या में दर्शक लोग यहाँ आते हैं। श्रीनगर से यहाँ आने के लिए दो मार्ग हैं। एक जल-मार्ग और दूसरा स्थल-मार्ग। निशात-बाग़ डल नाम की झील के किनारे पर बना है। अमीरा कदल में शिकारे पर बैठने से आप नदी और झील में से होते हुए निशात-बाग़ जा पहुँचते

मुंशीबाग़ से जेहलम का दृश्य

हैं। मार्ग में डल-झील का द्वार एक दर्शनीय दृश्य है, इस द्वार मे
पानी के आने के लिए दो मार्ग हैं। इनमें से पानी प्रबल वेग के
साथ जेहलम नदी की ओर बहता है। यहाँ नाविकों को प्रवाह
के विरुद्ध नाव ले जाने में बड़ी शक्ति लगानी पड़ती है। डल-द्वार मे
से लाँघ जाने पर नाव झील में प्रवेश करती है।

डल मीठे पानी की बड़ी सुन्दर झील है। महादेव पर्वत औ
श्रीनगर के बीच का सारा प्रदेश इस सरोवर ने घेर रक्खा है
इसका क्षेत्रफल लगभग १२ वर्ग मील है। इस झील के तीन भाग
हैं। एक रैना-वाडी और नसीम बाग़ के बीच। दूसरा, नसीम बाग़
और शालिमार बाग़ के बीच। इसमें स्वर्ग-लङ्का नाम का टापू है
तीसरा, नसीम बाग़ और शङ्कराचार्य पर्वत के बीच। इसमें रूप-लङ्का
नाम का टापू है।

डल का मध्यवर्ती भाग स्वच्छ और गम्भीर है। शेष भाग काई
घास और कमल-पत्रों से ढका हुआ है। जिस दिन प्रचण्ड वायु
बह रही हो उस दिन इस तैरती हुई घास-फूस में फँस कर नाव के
डूब जाने का डर रहता है।

जिस दिन हम डल देखने गये उस दिन मौसम बहुत अच्छा
था। जगह जगह कमल-फूल खिल रहे थे। तैरते हुए कमल-पत्रों का
एक हरा बिछौना-सा बिछ रहा था। इन पत्तों पर जल की बूँदें
मोतियों के समान चमकती थीं। सुना करते थे कि हंस सरोवरों में
रहते हैं और मोती चुगते हैं। विचार होता था कि मोती तो सागर
के तल में रहते हैं, सरोवर में मोती कहाँ। परन्तु इन नलिनी-दलगत

जल-बिन्दुओं को देखकर अनुमान हुआ कि कवियों ने इनमें ह
मोतियों की कल्पना की होगी। हंस इन्हीं मोतियों को चुगते हैं
मृणाल को तोड़ने से उसमें से दूध का ऐसा रस निकलता है। मराल
उसे पीता है। कदाचित् यही उसका नीर-क्षीर-विवेक है।

डल में बहुत-से तैरते हुए खेत हैं। घास-फूस का एक बहुत
बड़ा पुलिन्दा-सा बना लिया जाता है। उस पर मिट्टी डाल कर शाक
भाजी बो दी जाती है। इन तैरते हुए खेतों की कई बार चोरी भी हो
जाती है। चोर खेत का कुछ भाग काट कर ले जाते और अपने खेत
के साथ जोड़ देते हैं। इसे भूमि की चोरी कहते हैं।

निशात बाग़

हाँ, हम निशात बाग़ का वर्णन कर रहे थे। बाग़ के दो द्वार हैं।
द्वारों में से भीतर जाने पर वाटिका का पहला चौतरा मिलता है।
यह एक छोटा-सा आँगन है। गुल लाला और गुल नर्गिस आदि नाना
प्रकार के सुन्दर पुष्प तथा सर्व के पेड़ इसको अलंकृत कर रहे हैं।
इसके आगे, एक दूसरे के ऊपर, चार चौतरे और हैं। उन पर चढ़ने
के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। इन चौतरों के बीचो बीच
लम्बाई के रुख़ से जल की नहर बहती है। इस नहर में प्रत्येक चौतरे
के मध्य में फ़व्वारे लगे हुए हैं। ये रविवार के दिन छोड़े जाते हैं।
बाक़ी दिन बन्द रहते हैं। जल-मार्ग के दोनों ओर पुष्पों की नाना
आकार की सुन्दर क्यारियाँ हैं, हरी हरी घास से ढँके हुए स्थल हैं,
और चिनार के भीमाकार वृक्षों की पंक्तियाँ हैं। हरी घास से

निद्रित बुद्ध
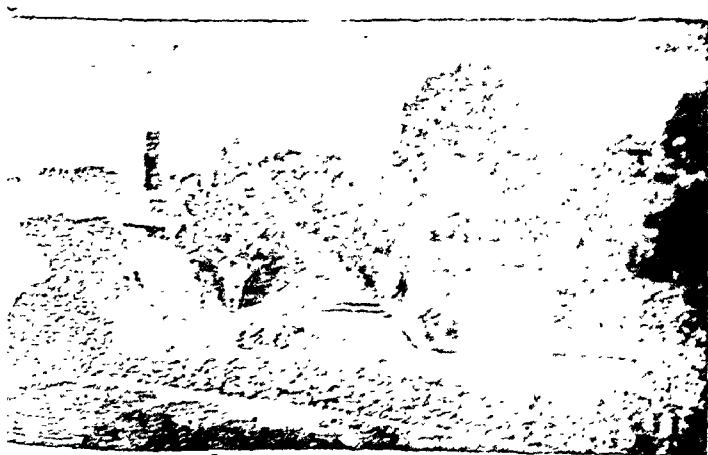
गाच्छादित एक के ऊपर दूसरा चौतरा, उछलते हुए फव्वारे, जल-प्रपात, पीछे महादेव पर्वत की ऊँची-नीची चोटियाँ, और आगे डल सरोवर तथा हरि पर्वत ये सब मिल कर एक बड़ा ही मनोहर दृश्य उत्पन्न करते हैं।

निशात बाग़ के बाहर फलों और हलवाइयों की दूकानें हैं। यहाँ खाने-पीने की वस्तुएँ मिल जाती हैं।

शालिमार बाग़

डल के मार्ग से और स्थल-मार्ग से, दोनों ओर से, शालिमार बाग़ श्रीनगर से नौ मील और निशात बाग़ से दो मील है। यह भी सरोवर के तट पर ही है। इस सौन्दर्य-वाटिका को जहाँगीर ने १७ वीं शताब्दी के आरम्भ में बनवाया था। नूरजहाँ को यह प्रमोद-वाटिका बहुत पसन्द थी। वाटिका एक चतुर्भुज क्षेत्र है। इसके गिर्द एक प्राचीर है। दो द्वार हैं। इसकी बनावट की कल्पना निशात बाग़ की ऐसी ही है। उसमें भी उसी प्रकार एक के ऊपर दूसरा चौतरा, फ़व्वारे, नाना वर्ण के फूल, और चिनार के पेड़ हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह निशात से बड़ा है। इसमें चार चौतरे हैं और प्रत्येक चौतरे के अन्त पर एक बारहदरी बनी हुई है। इन बारह-दरियों में बैठकर पानी के गिरने, फ़व्वारों के उछलने, और फूलों के झूमने का दृश्य बड़ा मनोरम देख पड़ता है। बीचोबीच पानी की पक्की नहर है। नहर के दोनों किनारों पर पगडंडी है। सबसे ऊँचे चौतरे पर एक गहरा कुण्ड है। उसके बीच ऊँची कुरसी पर एक

विस्तीर्ण बारहदरी है। बारहदरी के इर्द-गिर्द सैकड़ों फ़व्वारे छूट रहे हैं। उसकी छत पर काश्मीरी चित्रकारी की हुई है। बराण्डे की छत काले सङ्गमरमर के स्तम्भों पर रक्खी हुई है। इन काले स्तम्भों को देखकर बड़ा विस्मय होता है। इस बारहदरी के दायें और बायें वाटिका के सिरों पर कमरे बने हुए हैं। मुग़लों के समय में यहाँ बेगमें स्नान किया करती थीं।

रविवार के दिन इस वाटिका में ख़ूब चहल-पहल होती है। सहस्रों की संख्या में स्त्री-पुरुष यहाँ आते हैं। एक ख़ासा मेला होता है। फ़व्वारे भी इन वाटिकाओं में आदित्यवार को ही चलते हैं। निशात और शालिमार बाग़ में हार्वन नाम के कृत्रिम सरोवर से पानी आता है।

चश्मा शाही

निशात बाग़, शालिमार बाग़ और चश्मा शाही ये तीनों डल के किनारे पर हैं। परन्तु इन सब स्थानों को एक सुन्दर सड़क भी जाती है। अमीरा कदल से कोई दो मील के अन्तर पर, मुंशी बाग़ के उत्तर-पश्चिम कोण पर, गुप्कार सड़क आरम्भ होती है। यह सैर के लिए बड़ी अच्छी जगह है। इसके उत्तर-पश्चिम में एक पहाड़ी पर शङ्कराचार्य का मन्दिर बना हुआ है। सड़क के नीचे बादामी बाग़ हैं और बहुत से सुन्दर बँगले बने हुए हैं। बादामी बाग़ के परे नई छावनी बन रही है। यहाँ की वायु बहुत स्वच्छ है। सड़क के ऊपर महाराज के महल हैं। चुङ्गीघर से थोड़ी दूर आगे जाने पर

शालामार बाग़

नाशपाती, सेव और बग्गू गोशा के बाग़ ही बाग़ शुरू हो जाते हैं। इन बाग़ों के नीचे डल का सरोवर है।

गुप्कार की सड़क से केवल आध मील की दूरी पर पर्वतमाला है। एक पर्वत की काठी पर परी महल है। परी महल के सम्बन्ध में लोगों के बहुत विचित्र विचार हैं। कई लोग कहते हैं कि यहाँ परियाँ और देव रहते हैं। कई समझते हैं, यह साँपों का घर है। परन्तु यह सब अन्ध-विश्वास है। राज-तरङ्गिणी में लिखा है कि १७वीं शताब्दी में मुसलमान सूफ़ियों ने ज्योतिष-सम्बन्धी कामों के लिए यह भवन बनवाया था। इस समय तो खँडहरों के सिवा वहाँ कुछ नहीं है। परी महल में पहुँचने के लिए कोई सड़क नहीं है। झाड़ियों से भरी हुई पगडंडी है।

गुप्कार सड़क आगे चश्मा शाही को ले जाती है। यह झरना अमीरा कदल से पाँच मील है। चौथे मील पर नींद नाम का गाँव है। वहाँ से एक छोटी-सी पगडण्डी बड़ी सड़क से निकल कर झरने को गई है। यह एक मील का अन्तर चढ़ाई ही चढ़ाई है। आगे जाकर एक डाक-बँगला मिलता है। डाक-बँगला क्या है, अच्छा ख़ासा राज-मन्दिर है। बड़ा विशाल भवन है। सुना है, महाराजा हरिसिंह के नये विवाह का उत्सव यहीं मनाया गया था।

इस बँगले से कोई पाँच मिनट की दूरी पर चश्मा शाही या राज-कीय झरना है। झरने के सामने निशात और शालामार की शैली का छोटा-सा बाग़ बना हुआ है। इसमें उसी प्रकार फूल, बेलें और जल-प्रपात बनाये गये हैं। वाटिका के इर्द-गिर्द प्राचीर है। यह सम्राट्

जहाँगीर का बनवाया हुआ है। झरने का पानी काले संगमरमर के नल में से निकल कर ऊपर को उछलता है। इस नल के गिर्द एक छोटा-सा कुण्ड है। कुण्ड के ऊपर छत पड़ी हुई है। कुण्ड में दो लोहे के नल लगे हुए हैं। एक नल के रास्ते से झरने का पानी डाक-बँगले को जाता है, और दूसरे से वह बाग़ की चहारदीवारी से बाहर निकल कर धारापात करता है। झरने की इसी धारा से यात्री पानी लेते और स्नान करते हैं। जब बाग़ के भीतर के फ़व्वारे चलाने होते हैं तब इस नल को तथा डाक-बँगलेवाले नल को, दोनों को, बन्द कर दिया जाता है।

इस झरने का जल स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है। स्वास्थ्य सुधारने के लिए लोग इसके किनारे पर तम्बू लगा कर महीनों रहते हैं।

इसका पानी इतना ठण्डा है कि दोपहर के समय भी इसमें स्नान करना कठिन होता है। इसका जल जलोदर, पथरी, पेचिश, कब्ज़ और पेट के दूसरे रोगों के लिए बहुत हितकर बताया जाता है। परन्तु इसका पूरा लाभ उठाना हो तो यहाँ दो-एक मास रहना चाहिए। यहाँ श्रीनगर का-सा धुँआ और धूलि नहीं है। वायु बिलकुल शुद्ध और साफ़ है। पर्वत की तराई है। कोई सौ गज़ के अन्तर पर महादेव पर्वत है। सामने डल का पानी लहरें मार रहा है। चारों ओर, जहाँ तक दृष्टि जाती है, बादाम, नाशपाती, सेब, अंगूर, बगूगोशा, अख़रोट, आलूबुख़ारा, और गोर (चेस्टनट) के बाग़ ही बाग़ देख पड़ते हैं। वायु शुष्क है, जल शीतल है, नगर का कोलाहल और धूलि-धूसर नाम को नहीं है। चारों ओर हरियाली है। धान के खेत लहलहा

हे हैं। पानी की नहरें वह रही हैं। एकान्त है। ऐसे स्थान में किसके
स्वास्थ्य को लाभ न होगा।

चश्मा शाही पर रहने के लिए कोई मकान नहीं है। श्रीनगर से
तम्बू किराये पर मिल जाते हैं। किराया भी बहुत सस्ता है
श्री भूमानन्दजी तो श्रीनगर में ही रहे, परन्तु मैंने चश्मे पर रहने का
निश्चय किया। बुधवार १४ सितम्बर १९२७ को मैं, दोनों बच्चे, मे
पुराने मित्र श्री० रणजीतसिंहजी वानप्रस्थी और चूनी नौकर तम्
लेकर चश्मा शाही पर आ गये। तम्बू भी आर्य-समाज के प्रधान श्री
चिरंजीलाल जी की कृपा से मुफ्त मिल गया। टाँगे के लिए १=) दे
पड़े। घी, आटा, दाल, नमक-मिर्च, भाजी सब साथ लाना पड़ा था
कारण, चश्मे पर कुछ नहीं मिलता। यहाँ पहुँचे तो देखा कि द
बारह परिवार पहले से तम्बू लगाये पड़े हैं। जिस मनुष्य
भूमि में तम्बू गाड़ा जाता है, उसे एक रुपया मासिक कि
देना पड़ता है। तम्बू यदि आप गाड़ लिया जाय तो अच्छा न
तो आठ आने मजदूरी लेकर भूमि का स्वामी तम्बू भी ग
देता है। हमने उसे आठ आने देना व्यर्थ समझा और आप ही त
गाड़ लिया। लकड़ियाँ भी गाँव से मोल ले लीं। सुखानन्द
के एक रोगी यहाँ बहुत दिनों से रहते हैं। आपको जलोदर का
है। आप तीन वर्ष से यहाँ आते हैं और हर साल लगभग छः
रहते हैं। वे कहते हैं कि इसी जल के प्रताप से मैं अब तक जी
हूँ। यदि मैं यहाँ न आया करता तो अब तक अवश्य मर गया हो
सुखानन्दजी इस अस्थायी बस्ती के एक प्रकार से 'चौधरी' हैं।

आदि की बाँध बाँधने के लिए इनसे पर्याप्त सहायता मिलती है। उ समय इस उपनिवेश में अमृतसर, अम्बाला, लखनऊ, मुरादाबाद, झंग होशियारपुर, डेरा गाज़ी खाँ, रावलपिण्डी आदि के लोग बसे हुए थे।

गाड़ने को हमने तम्बू गाड़ तो लिया परन्तु कीलें अच्छी तरह गढ़े हुए नहीं थे। इसलिए वे भूमि में गहरे न गड़ सके। हम रात्रि के भोजन से निवृत्त होकर सोने की तैयारी कर रहे थे। तम्बू के भीतर बिछौने बिछा कर लिहाफ़ ओढ़े बात-चीत कर रहे थे कि इतने में बादल गर्जने लगा, प्रचण्ड वायु बहने लगी, और बूँदा-बाँदी आरम्भ हो गई। देखते ही देखते आँधी का प्रकोप बहुत बढ़ गया और वायु हमारे तम्बू को उखाड़ कर उड़ा ले चली। वह समय मुझे कभी नहीं भूलेगा। तम्बू एक-दम उखड़ कर हमारे ऊपर आ गिरा; लालटैन उलट कर बुझ गई; बाहर पौष-माघ की-सी शीतल पवन सरसराती हुई शरीर को चीरती जाती थी, और अन्धकार के कारण कुछ न सूझता था। उड़ जाने से बचाने के लिए हम सब तम्बू से चिमट गये और आँधी के बन्द होने की प्रतीक्षा करने लगे। परमात्मा का धन्यवाद है कि वह प्रलयकारी झंझावात एक घण्टे के भीतर ही शान्त होगया। यदि पानी बरसने लगता और आँधी का प्रकोप शान्त न होता तो उस रात हमारी बड़ी दुर्दशा होती। हवा के बन्द होते ही हमने झट से फिर तम्बू खड़ा कर लिया और रात भर ख़ूब चैन से सोये।

हम लोग यहाँ छः दिन रहे। परन्तु फिर कभी ऐसा काण्ड नहीं हुआ। नित सवेरे सूर्य निकलता था, आकाश निर्मल रहता था और

सैर का ख़ूब आनन्द आता था। हम सवेरे उठ कर निशात बाग़ की ओर घूमने निकल जाते, नौ बजे के लगभग लौट कर झरने के शीतल जल में स्नान करते, फिर भोजन करके कुछ देर विश्राम करते। तीसरे पहर फिर सामने के पहाड़ों की दुर्गम चोटियों पर चढ़ने का उद्योग करते। एक दिन की बात है, मैं, वेदव्रत और वानप्रस्थी जी सबसे ऊँची चोटी को लक्ष्य करके चढ़ने लगे। काँटेदार झाड़ियों, नुकीले पत्थरों, और लम्बी लम्बी घास में से होते हुए बकरियों के आने-जाने से बने हुए फिसलने मार्गों से हम ऊपर ही ऊपर जा रहे थे। कहीं कहीं घास को पकड़ते हुए रेंग कर चलना पड़ता था। दूर से जो चोटी सबसे ऊँची दिखाई पड़ती थी जब हम उस पर पहुँचते थे तो उससे परे एक और उससे भी ऊँची दीखने लगती थी। चढ़ते चढ़ते अन्त को हम एक ऐसी चोटी पर जा पहुँचे जिससे आगे जाना हमारे लिए सम्भव न था। वहाँ एक पहाड़ी हिरणी और उसका बच्चा हमारी आहट सुन कर भागे। इन सुन्दर जङ्गली जीवों को उतनी ऊँचाई पर दौड़ते देख कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। अब सूर्य भगवान् भी अस्ताचल की ओट में जाने को तैयार थे। हमने नीचे उतरना आरम्भ किया। अँधेरा हो जाने से जङ्गल में फँस कर मार्ग से भटक और फिसल जाने का भय था। इसलिए सूर्य के डूबते ही डूबते हम पहाड़ के नीचे उतर आये। ख़ूब भूख लगी। रात को पेट भर कर खाया।

पहाड़ पर जङ्गली उनाब की असंख्य झाड़ियाँ थीं। बच्चे उन्हें तोड़ कर बड़े स्वाद से खाते थे।

हार्वन

एक दिन हमने हार्वन की कृत्रिम झील देखने का निश्चय किया। १७ सितम्बर को सवेरे पराँठे और हलवा बनवा कर साथ ले लिया और दूध पीकर चल पड़े। हार्वन श्रीनगर से १२ और चश्मा शाही से ७ मील है। वही गुप्कारवाली सड़क निशात और शालामार बाग़ से होती हुई सीधी हार्वन पहुँचती है। हम कोई पौने दो घंटे में वहाँ जा पहुँचे।

यह झील प्राकृतिक नहीं; कृत्रिम रीति से बनाई गई है। इसे श्रीनगर का वाटर-वर्क्स कहना चाहिए। वहाँ नलों में यहीं से पानी जाता है। इसका क्षेत्रफल एक सहस्र गज़ से अधिक है। यहाँ से कोई चालीस मील की दूरी पर एक बहुत बड़ी हिमानी या बर्फ़ानी झरना है। वहाँ से पानी लाकर इस बड़े कुण्ड में डाला गया है। पानी को शुद्ध रखने के लिए रास्ते के सभी गाँव उजाड़ कर दूसरी जगह बसा दिये गये हैं। २०० वर्गमील तक न कोई आबादी है और न खेती। पानी की नहर हिमानी से आकर हार्वन को भरती है। गर्मियों में इसकी गहराई तीस फ़ुट होती है परन्तु सर्दियों में कोई पाँच-छः फ़ुट ही पानी रह जाता है। झील के किनारे पर जाने के लिए लकड़ी की सीढ़ी लगी हुई है। उसमें ४० पैड़ियाँ हैं। किनारे पर खड़े होकर देखने से इस विशाल सरोवर का दृश्य बड़ा ही मनोहर देख पड़ता है। जिधर से पानी की नहर आकर झील में पड़ी है उस ओर सरकारी निगरानी है। घना जङ्गल है। इसमें जाने

की आज्ञा नहीं है। इसमें बाघ, रीछ, भेड़िये, हिरण, गीदड़ और खरगोश आदि जन्तु रहते हैं।

सरोवर से कोई दो फर्लाङ्ग की दूरी पर एक जागीरी बाग़ है। इसमें फलदार पेड़ों का एक बहुत बड़ा भाण्डार है। प्रजा को ये पेड़ बहुत सस्ते मूल्य पर दिये जाते हैं। हमने इसी बाग़ में जाकर दोपहर का भोजन किया और फिर चश्मा शाही के लिए वापस चल पड़े। आज रविवार का दिन था। बहुत से लोग मोटरों पर निशात, शालिमार और हार्वन देखने के लिए आ रहे थे। प्रत्येक दो मिनट के बाद हमें एक मोटर मिलती थी। इनसे उठनेवाली दुर्गन्धि तथा धूलि ने हमारी सैर का सारा मज़ा ख़राब कर दिया। हम सायङ्काल चश्मा शाही पहुँच गये।

चश्मा शाही के पानी का असर दो सप्ताह के बाद मालूम होने लगता है। पहले आठ-दस दिन तक तो भूख साधारण रहती है, परन्तु बाद को वह बहुत बढ़ जाती है। इसलिए वहाँ देर तक रहने से ही लाभ है। इन छः दिनों में हमारी तौलों में भी पौंड डेढ़-पौंड की वृद्धि हुई। परन्तु अवकाशाभाव से हम अधिक दिन वहाँ न ठहर सके।

अजायबघर

श्रीनगर में तीन चीजें विशेषरूप से दर्शनीय हैं। एक अजायबघर, दूसरा औद्योगिक स्कूल और तीसरा रेशम का कारख़ाना। अजायबघर जेहलम नदी के तट पर बना हुआ है। इसमें छः कमरे

हैं। पहले कमरे में पक्षी, रेंगनेवाले जन्तु, मछलियाँ, हिरण, रीछ और बन्दर आदि की ठठरियाँ हैं। दूसरे कमरे में लकड़ी, गुलकारी, क़ालीन, काग़ज़ की गुद्दी की बनी हुई काश्मीरी चीज़ें, पुराने शस्त्र और काश्मीर के महाराजों के रङ्गीन चित्र हैं। तीसरे कमरे में भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी चीज़ें हैं। चौथे में काश्मीर की बूटियाँ और जङ्गल की उपजें है। पाँचवें कमरे में पुराने सिक्के, रियासत के करेंसी नोटों के लिए ठप्पे और अन्य सरकारी छापें हैं। छठे में पुरातत्त्व-विभाग द्वारा भूमि में से खोद कर निकाली हुई पुरानी चीज़ें, बुद्ध की मूर्तियाँ, और नाना भाषाओं के शिला-लेख हैं।

अजायबघर में काश्मीर के पंडित, राजपूत, मुसलमान, महाजन आदि जाति के लोगों के मिट्टी के पुतले बना कर खड़े किये गये हैं। दूर से ऐसा जान पड़ता है, मानो सचमुच मनुष्य खड़े हैं।

अजायबघर के साथ एक वेध-मन्दिर (मीटीरियालोजिकल डिपार्टमेंएट) भी है। परन्तु वहाँ यन्त्र एकाध ही है।

औद्योगिक स्कूल

औद्योगिक स्कूल हुज़ूरी बाग़ और बाढ़ के पानी की नहर के बीच एक खुले स्थान में बड़ा सुन्दर भवन है। यहाँ काश्मीरी लड़कों को चित्रकारी, लोहार, बढ़ई और राज का काम, बेत की कुरसियाँ और टोकरियाँ बनाना इत्यादि काम सिखाये जाते हैं। यहाँ हम कपड़े की चादर पर सुई से काढ़ा हुआ डल सरोवर का चित्र देखकर दङ्ग रह गये। दूर से ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी चित्रकार ने कैनवस के टुकड़े पर बुर्श से चित्र बनाया हो।

रेशम का कारखाना

रेशम का कारखाना बाढ़ के पानी की नहर के निकट रामबाग की सड़क पर है। संसार में कदाचित यह रेशम का सबसे बड़ा कारखाना है। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग १५,००० मन कच्चा रेशम तैयार होकर बाहर जाता है। इससे राज्य को बहुत आय होती है।

रेशम के कीड़ों का बीज अर्थात् उनके राई के दाने के समान बारीक अण्डे देहात में लोगों में बाँट दिये जाते हैं। कुछ देर बाद उनमें से छोटे छोटे कीड़े निकल आते हैं। इन कीड़ों को शहतूत की कोंपलें खिलाई जाती हैं। वे बड़े होकर अपने मुँह में से निहायत बारीक तार निकालने लगते हैं। इन तारों को अपने गिर्द लपेट कर वे कोए (cacoon) बनाते जाते हैं और अन्त को उन्हीं के भीतर बन्द हो जाते हैं। इन कोयों को गाँववाले इस कारखाने में लाकर बेच देते हैं। यहाँ इनका एक बहुत बड़ा संग्रह प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। इनको गरम पानी में उबाल कर नरम किया जाता है। कीड़े भीतर ही मर जाते हैं। फिर इन कोयों में से तार निकाल कर बिजली से चलनेवाली मशीनों के द्वारा रीलों पर लपेटा जाता है। जिस फुरती के साथ कारीगर लोग रेशम के बाल से भी अधिक बारीक तारों को जोड़ते हैं उसे देखकर विस्मय होता है।

अनन्त नाग

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि श्रीनगर में ठहरना व्यर्थ है। नगर में रहकर घाटी के नैसर्गिक सौन्दर्य का आनन्द नहीं लिया जा सकता

इसलिए हमने पहलगाम जाने का निश्चय किया। निशात बाग़ और शालिमार बाग़ के निकट होने के कारण मैंने चश्मा शाही और हार्वन का वर्णन उनके साथ ही ऊपर कर दिया है। वास्तव में, दोनों बाग़ों को देखने के बाद हम लोग पहलगाम चले आये थे और पहलगाम से पुनः श्रीनगर लौट कर चश्मा शाही पर तम्बू लगा कर रहे थे। श्रीनगर से पहलगाम ६१ मील है। मोटर जाती है। कोई ढाई रुपया किराया लगता है। हम २९ अगस्त को सायंकाल ३ बजे चलकर रात को कोई ७ बजे वहाँ जा पहुँचे। रास्ते में श्रीनगर से ३४ मील की दूरी पर पहला पड़ाव अनन्त नाग है। मुसलमानों ने जैसे प्रयाग का नाम इलाहाबाद कर दिया है वैसे ही इसका नाम भी इस्लामाबाद कर दिया है। यहाँ मीठे पानी का एक बड़ा झरना है। उसमें से पानी निकल निकल कर बहता है। यहाँ और कोई चीज़ दर्शनीय नहीं। तहसील होने के कारण यहाँ फल-फूल और खाद्य-पदार्थ सब मिल जाते हैं।

मट्टन

दस-पाँच मिनट यहाँ ठहर कर हमारी मोटर आगे चल पड़ी। यहाँ से ४ मील आगे मट्टन नाम का तीर्थ है। यहाँ भी पानी के झरने हैं। स्वास्थ्य के लिए भी यह स्थान अच्छा है। कई यात्री यहाँ बस्ती से बाहर तम्बू लगा कर रहते हैं। हरिद्वार आदि दूसरे तीर्थों की तरह यहाँ भी बहुत से पण्डे हैं। पर ये दूसरे तीर्थों के पण्डों की तरह तङ्ग नहीं करते। वरन इनसे यात्रियों को बहुत आराम

मिलता है। रुपया-दो रुपया जो भी दे दो प्रसन्नता-पूर्वक ले लेते हैं। इन लोगों के पास बड़ी बड़ी पुरानी वंशावलियाँ हैं। एक पण्डे ने मेरे सारे पूर्वजों के नाम सुनाये और मुझसे भी वही पर हस्ताक्षर करा लिये।

पहलगाम

मट्टन से आगे ११ मील की दूरी पर पेश मुक़ाम और उससे १२ मील आगे पहलगाम है। यह कोई दर्शनीय स्थान नहीं है, वरन् जैसा इसके नाम से प्रकट है, एक छोटा-सा गाँव है। यात्रियों के रहने के लिए भी यहाँ कोई मकान नहीं है। सब लोग तम्बू लगा कर रहते हैं। हमने भी वहाँ १२ × १४ साइज़ की एक बड़ी छोलदारी रहने के लिए और एक छोटी छोलदारी रसोई के लिए किराये पर ले ली। इन दोनों के लिए हमें एक सप्ताह के लिए ७) और दो सप्ताह के लिए १२) देने पड़े। आठ आना प्रति-सप्ताह पर लालटेन और दो आना रोज़ पर चारपाई भी मिल जाती है। हम यहाँ देर से पहुँचे थे। अँधेरा हो गया था। फिर छोलदा-रियाँ गाड़ने में देर लग गई। इसलिए उस दिन रात को १२ बजे भोजन कर सके। यहाँ वर्षा का डर हर समय रहता है। इसलिए छोलदारी के इर्द-गिर्द एक नाली खोद ली जाती है, जिससे वर्षा का जल भीतर न आकर बाहर ही बाहर बह जाय। यद्यपि यहाँ वर्षा का ज़ोर जुलाई-अगस्त में होता है तो भी थोड़ी बहुत बूँदाबाँदी का खटका हर समय लगा रहता है और थोड़ा-सा भी पानी बरस जाने से बहुत ठंडक हो जाती है।

पहलगाम समुद्र-तल से ७,२०० फुट ऊँचा है। इतनी उँचाई पर मैदान का होना बड़ी दुर्लभ बात है। पहलगाम की विशेषता और सौन्दर्य इसके मैदान में ही है। मैदान हरी घास से ढँका हुआ है। इसके एक किनारे पर लम्बोदरी नदी बह रही है। दूसरी ओर देवदारु के हरे-भरे जङ्गलों से लदी हुई पर्वत-माला है। नदी का जल हिम के समान शीतल और अत्यन्त निर्मल है। यहाँ तम्बू लगा कर रहने के लिए भूमि का किराया नहीं देना पड़ता। इसलिए कुछ लोग तो नदी के किनारे तम्बू गाड़ लेते हैं और कुछ पहाड़ पर देवदारु के पेड़ों के तले। इस समय यहाँ एक अच्छा खासा तम्बुओं का नगर बसा हुआ था। कई अँगरेज़ परिवार भी थे। जून-जुलाई में यहाँ ख़ूब रौनक रहती है। इस समय सर्दी अधिक हो जाने के कारण उतनी रौनक नहीं थी।

सुना है, कई धनी मनुष्य यहाँ अपने लिए पक्के मकान बनवाना चाहते थे। परन्तु राज्य ने उन्हें इसकी आज्ञा नहीं दी। यात्री लोग यहाँ १५-२० आक्टोबर तक ही रहते हैं। इसके उपरान्त शीत बहुत बढ़ जाता है। इसलिए सब लोग चले आते हैं। यहाँ डाक-घर भी छः मास ही रहता है। यह स्थान फेफड़े के रोगियों के लिए बहुत हितकर है। उनको यहाँ बड़ा लाभ होता है।

खाद्य-पदार्थों की यहाँ केवल तीन-चार दूकानें हैं। वे भी १५ आक्टोबर के उपरान्त बन्द हो जाती हैं। आटा-दाल, फल-फूल और साग-तरकारी सब नीचे से—श्रीनगर आदि से—आती हैं। इसलिए ये चीज़ें महँगी हैं और कभी कभी मिलती भी नहीं। इन दिनों इनका

व यहाँ इस प्रकार था—गेहूँ का आटा रुपये का ५ सेर, मक्की का
ाटा ६ सेर, बग्गूगोशा दो पैसे को एक, आलू चार आने सेर।
ाजी-तरकारी तो अच्छी मिलती ही न थी। परन्तु कुछ दिन के
ाद गाँव में स्थानीय मटर हो गई। वह तीन आने सेर मिल जाती
ी। लकड़ी की बड़ी बहुतायत है। पास ही जङ्गल है। वहाँ से
जितनी चाहो इकट्ठी करके उठा लाओ। और दूध, घी, मक्खन और
मधु यहाँ बहुत शुद्ध और सस्ते मिल जाते हैं। यहाँ गूजर गाय का
गाढ़ा दूध ढाई तीन आने सेर आपके सामने दुह कर दे जाते हैं।
शुद्ध गौ का घी रुपये का १२ छटाँक और मक्खन रुपया अठारह
आने सेर मिल जाता है। इनमें मिलावट का नाम तक नहीं होता। मधु
से भरे हुए छत्ते 'टाकू' (मिट्टी के प्याले) में रखकर बेचे जाते हैं।

हम लोग २९ अगस्त की रात्रि को यहाँ पहुँचे थे। ३० तारीख़
को सारे दिन बादल छाये रहे और थोड़ी सी बूँदाबाँदी भी हुई।
ठंडक बहुत बढ़ गई। हम घबराये कि कहाँ आ गये। न आते
तो अच्छा था। परन्तु ३१ अगस्त को सवेरे उठे तो आकाश निर्मल
था। कुछ ही देर में भगवान् भास्कर के दर्शन हुए। मुरझाई
हुई तबीअत खिल उठी। लिद्दर उपत्यका सोने के रङ्ग में रँगी
गई। ऐसे अच्छे मौसम में किसका जी सैर करने को न चाहेगा।
सच तो यह है कि पहाड़ पर आकर जो मनुष्य घूमता-फिरता
नहीं, उसका आना व्यर्थ है। वह तन्दुरुस्त नहीं रह सकता।
दोपहर का भोजन करके मैं, दोनों बच्चों को साथ लेकर,
नदी के पार पर्वत पर चढ़ने के लिए चल पड़ा। सबसे ऊँची चोटी

पर चढ़ने का निश्चय किया। परन्तु वहाँ पहुँचने के लिए को: रास्ता न था। बड़ी कठिनाई से घास और झाड़ियों को पकड़ते पकड़ते पर्वत के शिखर पर पहुँचे। सारा पर्वत देवदारु वे वृक्षों से लदा हुआ था। परन्तु चोटी बिलकुल नङ्गी थी। उस पर बहुत छोटी छोटी घास थी। चोटी ऐसी दीखती थी मानो किसी बड़े हाथी की पीठ हो। अच्छा खासा मैदान था। यहाँ हमें नाना वर्णों के सुन्दर पुष्प मिले। एक खदसू नाम की बेल मिली। वह बड़ी सुन्दर थी। एक मोटी डण्डी भूमि पर लेटी हुई थी। उस पर गहरे हरे रङ्ग के छोटे छोटे गोल पत्ते लगे हुए थे। वे इतने घने थे कि मोटी डण्डी बिलकुल न दिखाई देती थी। इन पत्तों में लाल रङ्ग के छोटे छोटे गोल फल लगे हुए थे। ये फल ऐसे सुन्दर जान पड़ते थे, मानो धानी मखमल पर किसी चतुर कारीगर ने क़ीमती लाल टाँक रक्खे हों। हम इसे उखाड़ लाये। हमारे पड़ोस में एक देवी ठहरी हुई थीं। उन्हें यह बेल बहुत पसन्द आई। मैंने यह उन्हीं को भेंट कर दी। आपने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

पर्वत से उतरने के लिए हम कोई पगडंडी खोजने लगे। जिस ओर से हम चढ़े थे उसके दूसरी ओर हमें एक रास्ता दिखाई दिया। हम उधर ही चल पड़े। यह रास्ता हमें महमल नाम के एक गाँव में ले गया। यहाँ का ग्राम्य-जीवन देखने के लिए हम एक घर में गये। समूचा घर लकड़ी का बना था। उसके निचले खण्ड में पशु बँधते थे। उनके मल-मूत्र की दुर्गन्ध आ रही थी। ऊपर की छत के कमरे कबूतरों के दरबे के समान थे। भीतर अन्धकार था। धुएँ से छत

काली हो रही थीं। जिस प्रकार अँगरेजों को हमारे मकान गन्दे जान पड़ते हैं, वैसे ही यह मकान हमें कालकोठरी जान पड़ा। ऐसे स्वास्थ्य-वर्धक प्रदेश में ऐसा स्वास्थ्य-नाशक मकान! यह सब अविद्या और दरिद्रता की ही विडम्बना है।

टुलियन

पंजाब टेक्स्ट-बुक कमेटी, लाहौर के कार्यालयाध्यक्ष श्रीयुत हर-दयाल जी भी पहलगाम आये हुए थे। वे पहले भी यहाँ अनेक बार आ चुके थे। उन्होंने हमें बताया कि यहाँ से कोई दस ग्यारह मील की दूरी पर टुलियन नाम का स्थान है। वहाँ सदा बर्फ रहती है। वह देखने योग्य है। हृदय का रोग होने के कारण वे आप उतनी ऊँचाई पर चढ़ नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने हमें कोई पथ-दर्शक ले लेने को कहा। उनके मुख से टुलियन के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर हमारे मन में भी उसके दर्शनों की उत्कट लालसा उत्पन्न हुई। परन्तु बहुत यत्न करने पर भी कोई पथदर्शक न मिला। अन्त को हमने बिना पथदर्शक के ही चल पड़ने का निश्चय कर लिया।

२ सितम्बर १९२७ को सवेरे दूध पीकर और खाने की सामग्री साथ लेकर मैं, वेदव्रत, गार्गी, और श्री गुरुदत्त सिद्धान्तालङ्कार टुलि-यन के लिए चल पड़े। टुलियन लिद्दर नदी की बाईं ओर है। डाक-घर के पास से पगडंडी जाती है। सड़क से ही चढ़ाई आरम्भ हो गई। हम लोग घने जंगल में से पर्वत पर चढ़ने लगे। कोई ढाई मील ऊपर जाकर एक छोटा-सा सुन्दर मैदान मिला। इसका नाम बायसरण

है। यहाँ एक अँगरेज प्रोफ़ेसर ने तम्बू गाड़ रक्खा था। पहाड़ पर मैदान और झरने ही देखने योग्य होते हैं। सो इस मैदान को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

वायसरण तक पगडंडी अच्छी थी। आगे रास्ते का पता नहीं चलता था। पूछ कर हम बाईं ओर को चल पड़े। अब चढ़ाई और भी तीखी होने लगी। रास्ते के चिह्न भी उतने स्पष्ट न रहे। रास्ता बतानेवाला भी वहाँ कोई न था। उस जंगल में कोई मनुष्य हो तो रास्ता बताये। हम अनुमान से काम लेते हुए ऊपर चढ़ रहे थे। कोई ढाई मील और आगे जाने पर एक छोटा-सा मैदान मिला। वहाँ गूजरों की एक झोंपड़ी थी। इस गाँव का नाम कैमूर था। हम झोंपड़ी में गये और दूध लेना चाहा। परन्तु दूध न मिला। वहाँ दो स्त्रियाँ और एक छोटा-सा बच्चा था। मैंने छोटे बच्चे को गोद में उठाकर उसे एक पैसा दिया। उससे उसकी माता बहुत प्रसन्न हुई। इतने में तेरह चौदह वर्ष का एक लड़का वहाँ आ गया। वह उस स्त्री के जेठ का पुत्र था। उसका नाम गफ़ूर था। स्त्री ने गफ़ूर से कहा, जाओ इनको टुलियन दिखा आओ। अब हमें पथदर्शक मिल गया। हम उसके पीछे पीछे चलने लगे। अगला रास्ता बहुत ही ढालू था। फिर वर्षा के कारण वह गीला होकर रपटहर हो रहा था। घोड़े पर सवार होकर यहाँ आना कठिन है। पैदल चलने की शक्ति रखनेवाले ही इस पर्वत का आनन्द ले सकते हैं। रास्ते में एक जगह हमें एक बहुत बड़ी अराडाकार खुम्ब मिली। यह कम से कम आध सेर होगी। दूर से यह ऐसी देख पड़ती थी मानो सफ़ेद पत्थर का एक

वाड़ी तक आने-जाने का घोड़े का किराया सवा रुपये के लगभ लगता है। परन्तु पैदल चलने का जैसा आनन्द 'पैक हाकर' घो पर बैठने में कहाँ। हम घोड़ों से भी पहले चन्दनवाड़ी पहुँच गये।

चन्दनवाड़ी की उँचाई समुद्रतल से ९,५०० फुट है। यहाँ एक बड़ा सुन्दर मैदान है। इसके नीचे दो नदियों का सङ्गम है। यहाँ का सुखद समीर, स्वच्छ स्फटिक जल, गाती हुई नदियाँ, निकटवर्ती पर्वतों के ऊँचे ऊँचे ढाँग यात्रियों के मन पर बड़ा अद्भुत प्रभाव डालते हैं। इस मैदान से कोई एक फरलाङ्ग परे डाक-बँगला है। डाक-बँगले के नीचे शेषनाग नाम का एक नाला बहता है। जब हम वहाँ पहुँचे तो नाले के ऊपर बर्फ़ का बना पुल देखकर बड़ा कौतूहल हुआ। कोई एक सहस्र वर्गफुट क्षेत्र में नदी का पेट बर्फ़ से भरा हुआ था। इस अमित हिमराशि के नीचे से नदी का जल प्रबल वेग से बहता था। पानी ने बर्फ़ को भीतर ही भीतर काट कर एक मिहराब-सी बना रक्खी थी। इस बर्फ़ानी मिहराब के ऊपर चल कर यात्री नदी को पार करते थे। कहाँ तो लाहौर जैसे नगर में पैसे की बर्फ़ पाव भर भी मुश्किल से मिलती है और कहाँ यह लम्बी-चौड़ी हिमानी ग्लेशियर! भगवान् की माया अपार है। कुछ काल तक इस हिमसेतु का आनन्द लेने के बाद हम पहलगाम को लौट पड़े।

पहाड़ी कन्दरा

चन्दनवाड़ी से दो मील इधर सड़क पर एक बड़ी कन्दरा है। उसमें एक साधु रहता है। कहते हैं कि सर्दियों में जब यह सड़क

बर्फ़ से अट जाती है तब भी ये महात्मा इसी गुफा में रहते हैं। लौटते समय मैंने इनके दर्शनों के लिए भी जाना आवश्यक समझा। गुफा खासी लम्बी-चौड़ी थी। इसमें लगभग पचास मनुष्य अच्छी तरह बैठ सकते हैं। कन्दरा में महात्मा ने लकड़ी की एक आलमारी भी बनवा रक्खी है। जब मैं वहाँ पहुँचा तो एक बङ्गाली साधु कन्दरा में बैठे थे। वे अच्छे पण्डित जान पड़ते थे। उनके साथ कुछ देर तक बातचीत की।

अब क्योंकि समय अधिक हो गया था इसलिए मैं अधिक देर तक कन्दरा में न ठहर सका। साधु को नमस्ते करके चला आया और सूर्य्य अस्त ही होने को था कि पहलगाम पहुँच गया।

पहलगाम में इस समय लिहाफ़ ओढ़कर सोना पड़ता था और सरदी दिन पर दिन बढ़ रही थी। इसलिए हमने वापस चलने की ठानी। इस समय यहाँ लारियाँ कम मिलती थीं। इसलिए हमें श्रीनगर से मोटर का प्रबन्ध करना पड़ा। ५ सितम्बर १९२७ को सवेरे हम लारी में श्रीनगर के लिए चल पड़े। मट्टन से सीधा अनन्तनाग जाने के स्थान में मार्तण्ड का मन्दिर और अच्छबल भी रास्ते में देखते जाने का विचार हुआ। लारी में सब सवारियाँ अपनी ही थीं। इसलिए उसे अच्छबल ले जाने में कुछ अड़चन न हुई। कोई पौने तीन रुपये सवारी देकर हम, मार्तण्ड-मन्दिर और अच्छबल देखते हुए, उसी दिन श्रीनगर जा पहुँचे।

मार्तण्ड-मन्दिर

अच्छबल को मट्टन से [illegible] है। कोई [illegible]

मार्तण्ड-मन्दिर मिला। इस समय यह खँडहर है। इसे महाराजा रा
दित्य और उनकी रानी अमृतप्रभा ने ५वीं शताब्दी में बनवाया थ
फिर महाराज ललितादित्य ने ८वीं शताब्दी में इसकी मरम्मत कर
थी। इसका चतुर्भुजाकार आँगन २२५×१५० फ़ुट है। मुख
मन्दिर २१ वर्ग गज़ के चबूतरे पर खड़ा है। पत्थर की छत को ८
बड़े बड़े स्तम्भ उठाये हुए हैं। यहाँ बहुत से बड़े बड़े मिट्टी के मटके
निकले हैं। इनका रङ्ग लाल है। कई मटके अभी तक भूमि में गड़े
हुए हैं। मैंने एक को नापा तो वह ६ बालिश्त ऊँचा था। पत्थर के
स्तम्भों पर देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं।

अच्छबल

मन्दिर देखने के बाद हम फिर लारी में सवार हो गये और कोई
एक घण्टे में अच्छबल जा पहुँचे। सड़क के कच्ची होने के कारण ही
हमें इतनी देर लगी। यहाँ से अनन्तनाग ७ मील है। अच्छबल
चूने के पहाड़ के चरणों में चिनार के बड़े बड़े वृक्षों का सुन्दर बाग़
है। पहाड़ में से पानी के बहुत से झरने उछलते हुए निकलते हैं और
सब मिलकर एक धारा के रूप में बहने लगते हैं। शान्ति-प्रिय लोगों
के लिए यह बहुत अच्छी जगह है। बहुत से लोग यहाँ तम्बू लगाकर
सपरिवार तीन-तीन, चार-चार महीने रहते हैं। यहाँ हमने काश्मीरी
लड़कों का नाच और गान सुना। सचमुच काश्मीर में आकर संगीत
मर गया है।

श्रीनगर पहुँच कर आठ-नौ दिन आराम किया। फिर १४

सितम्बर को, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, पाँच-छः दिन
लिए चश्माशाही चले गये। वहाँ से लौटकर २१ सितम्बर को ज
के रास्ते लाहौर के लिए चल पड़े। अब तक हम झेलम न
का स्रोत, वैरीनाग, न देख सके थे। इसलिए हमने लारीव
से तय कर लिया कि हमें रास्ते में वैरीनाग भी दिखलाते जान
वैरीनाग अनन्तनाग से १६ मील है। श्रीनगर-जम्मू की स
में से एक छोटी-सी सड़क निकलकर वहाँ जाती है। प्रधान स
से कोई ढाई मील की दूरी पर वैरीनाग है। पत्थर का बना हु
अष्टकोण कुण्ड है। इसी में से यह महान् झरना बड़े वेग
निकलता है। कुण्ड में असंख्य मछलियाँ हैं। पानी निहा
साफ़, ठंडा और बहुत गहरा है। किनारे पर छः गज़ परन्तु
में १८ गज़ से भी बहुत अधिक गहरा है। कुण्ड के इर्द-गिर्द
चहारदीवारी है। चहारदीवारी में बड़े बड़े ताक बने हुए हैं।
के समय लोग इनमें बैठकर भीगने से अपनी रक्षा कर सकते
चहारदीवारी पर फ़ारसी में ये शिला-लेख खुदे हुए हैं:—

हैदर बहुक्मे शाहजहाँ बादशाहे दहर,
शुक्रे ख़ुदा कि साख़्त चिकन आबशारो जू।
ईं जूए दादा अस्त जे जूए बहिश्त याद,
जीं आबशार याफ़्ता कश्मीर आबरू।
तारीख़े जूए आब बगुफ़्ता सरोशे ग़ैब,
अज़ चश्मए बहिश्त बरूँ आमदास्त जू।

इससे प्रकट होता है कि हैदर नाम के किसी एञ्जीनियर ने

१०३६ हिजरी में बादशाह की आज्ञा से इसे बनाया था। इस फसील और कुण्ड को बने आज ३०९ वर्ष हो गये।

दूसरा लेख इस प्रकार है—

बादशाहे बैज़त किशवर शहनशाहे अदालत गुस्तर अबुलमुज़फ्फ़र नूरुद्दीन जहाँगीर पादशाह इब्न अकबर बादशाह ग़ाज़ी बतारीख़ सिह १५ जुलूस दरीं सर चश्मए फ़ैज़ आई नज़ूल अजलाल फ़रमूदंद। बई इमारत बहुक्मे आँ हज़रत सूरते एहतमाम याफ़्त। अज़ जहाँ-गीर शाह बिन अकबर शाह ई बिना.....(आगे थोड़े से अक्षर मेरी नोट-बुक में मिट गये हैं)।

इससे पता लगता है कि १६वीं शताब्दी में जहाँगीर ने इसे बनवाया था।

यहाँ एक छोटी-सी बस्ती है। दूकानें भी हैं। पण्डे रहते हैं। दाल-आटा मिल जाता है।

वैरीनाग में हमारी लारी बिगड़ गई। इसलिए बड़ी मुश्किल से रात को दस बजे बनिहाल की सुरङ्ग पर पहुँचे। यह स्थान पीर-पंचाल की चोटी है। इसकी ऊँचाई ८,९८९ फुट है। इसलिए रात को बड़ी सरदी थी। दूसरे दिन सवेरे चले। परन्तु रास्ते में मोटर फिर बिगड़ गई। बड़ी तकलीफ़ हुई। रात को बड़े यत्न से ऊधमपुर पहुँच सके। २३ तारीख़ को सवेरे चलकर जम्मूँ पहुँचे।

दैवयोग से उसी समय रेलगाड़ी मिल गई। उसमें सवार हो सायंकाल ७ बजे लाहौर पहुँच गये। महीना भर हमें पसीना तक नहीं आया था। अब फिर गरमी के मारे पसीना आने लगा। पाँच-

सात दिन बड़ी तकलीफ़ मालूम हुई। परन्तु फिर शरीर इसका अभ्यस्त हो गया।

एक महीने में सारा काश्मीर देखना मुश्किल है। किसी स्थान में जाकर उस पर दृष्टि डाल लेने का ही नाम देखना नहीं। जब तक वहाँ कुछ दिन ठहरा न जाय, उसके गुणों का ज्ञान नहीं होता। गुलमर्ग, सुनमर्ग और गाँधरबल आदि जिन दो-एक स्थानों में हम, समयाभाव से, नहीं जा सके, जीवन रहा तो फिर कभी वहाँ जायँगे [illegible] कर आनन्द लेंगे।

कुल्लू-यात्रा

पंजाब में हिमगिरि-माला का जो भाग उत्तर-पूर्व में फैला हुआ है उसमें यों तो काश्मीर, मरी, एबटाबाद, शिमला, धर्मशाला और डलहौज़ी प्रभृति अनेक स्वास्थ्य-हितकर पहाड़ी स्थान हैं, जहाँ लोग गर्मियों में भ्रमणार्थ जाते हैं, परन्तु कुल्लू में कई ऐसी विशेषतायें हैं जो उनमें से किसी में भी नहीं। उन स्थानों में रहने का खर्च भी इतना अधिक है कि साधारण स्थिति का मनुष्य वहाँ नहीं जा सकता। केवल धनी लोग ही शिमला और काश्मीर का आनन्द ले सकते हैं। दूसरे, जिस उद्देश्य से मनुष्य पर्वतों पर जाता है वह उन स्थानों में जाने से बहुत कम पूरा होता है। वर्ष भर निरन्तर काम करते रहने के बाद मनुष्य चाहता है कि कोलाहलमय संसार से दूर जाकर कहीं एकान्त में विश्राम करे। परन्तु रेल की निकटता के कारण सभ्यता के रोग—सिनेमा, थिएटर, फ़ैशन—वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। काश्मीर के श्रीनगर में तो लाहौर के समान ही धुआँ, धूलि और दुर्गन्ध भी है। फिर कुल्लू में जितना फल और जिस प्रकार का बढ़िया सेब होता है, उतना और वैसा किसी भी दूसरे पहाड़ी स्थान में नहीं होता। कुल्लू की उपत्यका लाहौर से कोई पौने तीन सौ मील दूर, उत्तर-पूर्व में, प्रकृति की शान्तिमयी गोद में

विश्राम कर रही है। उसके भोले-भाले निवासी, हरे-भरे जंगल, तुषारमण्डित शैल-शृङ्ग, मनोहारी दृश्यावली, नाचती-गाती नदियाँ, शीतल जल और स्वच्छ सुगन्धित वायु सृष्टि-सौन्दर्य के उपासकों का मन बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

पहले कुल्लू पैदल चलकर या घोड़ा-खच्चर पर सवार होकर जाना पड़ता था। परन्तु अब कुछ वर्ष से 'काँगड़ा वेली रेलवे' बन गई है। लाहौर से पठानकोट तक 'नार्थ वेस्टर्न रेलवे' की बड़ी लाइन है। अप्रैल, मई और जून के महीनों में लाहौर से रोज सायंकाल ४ बजकर ३० मिनट पर एक विशेष द्रुतगामी ट्रेन चलती है, जो उसी रात लगभग नौ बजकर ३ मिनट पर पठानकोट पहुँच जाती है। पठानकोट से आगे योगेन्द्र-नगर तक २½ फुट चौड़ी छोटी पटरी की रेल है। वह लाहौरवाली गाड़ी के यात्री लेकर उसी रात चल पड़ती है और दूसरे दिन सवेरे कोई ७ बजकर ४० मिनट पर योगेन्द्र-नगर पहुँच जाती है। योगेन्द्र-नगर से फिर ८ बजकर ४० मिनट पर आगे लारी चलती है। वह मण्डी होती हुई कोई ४ बजकर १० मिनट पर सायंकाल कुल्लू पहुँचा देती है। पठानकोट से योगेन्द्र-नगर १०० मील और योगेन्द्र-नगर से सुलतानपुर (कुल्लू) ७५ मील है। लारी का किराया प्रतियात्री पौने चार रुपये के लगभग है। जुलाई में वर्षा-ऋतु आरम्भ हो जाती है, इसलिए पठानकोट और योगेन्द्र-नगर के बीच रात को कोई गाड़ी नहीं चलती।

इसमें सन्देह नहीं कि रेल और मोटर-लारी ने कुल्लू पहुँचना बहुत आसान कर दिया है, परन्तु पर्वत-यात्रा का जो आनन्द और जो

लाभ पैदल चल कर कुल्लू पहुँचने में है वह पार्सल की तरह रेल
लारी में 'बुक' होकर जाने में नहीं। मुझे तो वैसे भी मोटर-ल
पहाड़ जाने में कष्ट होता है। पेट्रोल की दुर्गन्ध और पहाड़ी
के घूम-घुमाव से मुझे उलटी होने लगती है। इसलिए पैदल
चलने का निश्चय किया।

कुल्लू जाने के लिए तीन मार्ग हैं। एक तो उपरिलिखित ला
से रेल में पठानकोट होते हुए योगेन्द्र-नगर और वहाँ से लारी
मण्डी होते हुए कुल्लू। दूसरा शिमला से फागू, ठियोग, मतिया
नारकण्डा, लूहरी, अनी, खनाग, शोजा, बनजार, लारजी, बजौ
और भूईंतर होते हुए कुल्लू। यह मार्ग १२०½ मील लंबा है। मोट
लारी नहीं चलती। पैदल या घोड़े पर सफ़र किया जाता है। शिम
से बिलासपुर के रास्ते मण्डी होते हुए भी कुल्लू जाते हैं। यहाँ
मोटर नहीं चलता। शिमला से मण्डी ७ पड़ाव या ८४½ मील है
फिर मण्डी से कुल्लू ४२ मील है। कुल्लू का तीसरा रास्ता होशियार
पुर से है। होशियारपुर से भी दो मार्ग हैं। एक होशियारपुर से
ऊना, बड़ं, जाहू, गलमादेवी के रास्ते मण्डी। मण्डी होशियारपुर से
लगभग ९४ मील है। पहले यहाँ भी मोटर-लारी से यात्री जाते-आते
थे, परन्तु अब रास्ता ख़राब हो जाने से दो-एक वर्ष से मोटर का
आना-जाना बन्द है। होशियारपुर से मण्डी का दूसरा मार्ग होशियार
पुर से गगरेट और ज्वालाजी होते हुए रानीताल के 'ज्वालामुखी-रोड-
स्टेशन' पर 'काँगड़ा-वेली-रेलवे' की गाड़ी लेकर योगेन्द्र-नगर जा
पहुँचना और वहाँ से लारी में मण्डी जाना है। होशियारपुर से

ज्वालाजी-रानीताल तक लारी भी जाती है, परन्तु वर्षाकाल में वह कुछ मास बन्द रहती है।

हमने इस वर्ष इस पिछले मार्ग से ही कुल्लू जाने का निश्चय किया। हमारे दल में सब मिलाकर दस जन थे। मैं १७ अगस्त १९३७ को लाहौर से चलकर होशियारपुर के निकट अपने जन्म-स्थान, पुरानी बसी, में पहुँच गया। मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दर बाई, पुत्री गार्गीदेवी और सेवक सूरजबली था। पुरानी बसी में पाँच-छः दिन ठहर कर यात्रा की तैयारी की। असबाब उठाने के लिए १=) रोज़ प्रतिखच्चर के हिसाब से दो खच्चर लिये। खाने-पीने के लिए कुछ मीठा और नमकीन पकवान बनवाया और रक्षा के लिए 'सफ़ा-जंग' अर्थात् एक विशेष प्रकार का फरसा लिया। रोटी बनाने के आवश्यक बर्तन, छतरियाँ, लालटेन, टार्च, मोमबत्तियाँ, मोमजामे, चपलियाँ और बल्लम भी पहाड़ी यात्रा के लिए साथ लेना आवश्यक था। २१ अगस्त १९३७ की रात को जात-पाँत-तोड़क-मण्डल, लाहौर, के उपमंत्री श्रीयुत इन्द्रसिंह जी भी, अपनी भगिनी सुशीलादेवी और छोटे भाई नरेन्द्रपालसिंह को साथ लेकर मेरे पास पुरानी बसी पहुँच गये। इनके अतिरिक्त मेरा भतीजा रणवीरचंद और भतीजी उमादेवी भी हमारे साथ चलने को तैयार हो गईं। इस प्रकार निक्काराम खच्चरवाले को मिलाकर हमारे दल में दस मनुष्य हो गये। सोमवार २३ अगस्त १९३७ को सायंकाल यह दल यात्रा के लिए निकल पड़ा। ५ मील तक रास्ता समतल था। आगे पर्वत के मुखालय में पहुँचने पर चोहाल नाम का पड़ाव मिला। यहाँ से पहाड़ आरम्भ हो जाता

है। यहाँ एक टूटी हुई सरकारी सराय और दूध-मिठाई की तीन-साधारण-सी दूकानें हैं। इर्द-गिर्द टीलों पर मुसलमान गूजरों के हैं। चोहाल से सड़क ऊपर चढ़ने लगती है। यहाँ थोड़ा विश्र करने के पश्चात् हम आगे चल पड़े और चार मील चलकर रात्रि मंगूवाल नामक पड़ाव पर जा पहुँचे।

तले हुए मीठे भटूरे अर्थात् खमीरी मोटी रोटियाँ हमारे सा थीं। उन्हें खाकर थोड़ा-थोड़ा दूध पी लिया और चारपाइयाँ लेक सो गये। यात्रा का पहला दिन था। लड़कियाँ पहले कभी इतन पैदल नहीं चली थीं, इसलिए आशा थी कि थक जाने के कारण ख़ू नींद आयेगी, परन्तु खाटों में पिस्सुओं के काटने से भली भाँति नीं न आई।

२४ अगस्त को सवेरे तड़के उठे। परन्तु असबाब बाँधने और खच्चरों पर लादने में कोई डेढ़ घंटा लग गया। मंगूवाल से ७ मील पर गगरेट नाम का पड़ाव है। सूर्योदय के साथ हम वहाँ जा पहुँचे गगरेट से आगे सुआँ नदी मिली और ४ मील की दूरी पर अम्ब नाम का छोटा-सा नगर मिला। यहाँ थाना और स्कूल है, छोटा-सा बाज़ार भी है। अम्ब के राजा साहब का एक सुन्दर फलोद्यान है। यहाँ हमने नाशपाती और अमरूद लिये। अम्ब से आगे कोई डेढ़ मील पर एक पहाड़ी खड्ड मिला। यहाँ स्नान कर जल-पान किया। गगरेट से लेकर इस खड्ड तक एक छोटी-सी उपत्यका है। खड्ड के आगे फिर चढ़ाई शुरू हो जाती है। एक तो दोपहर का समय, ख़ूब धूप चमक रही थी, दूसरे यह चढ़ाई। मेरी स्त्री जो लाहौर में कभी
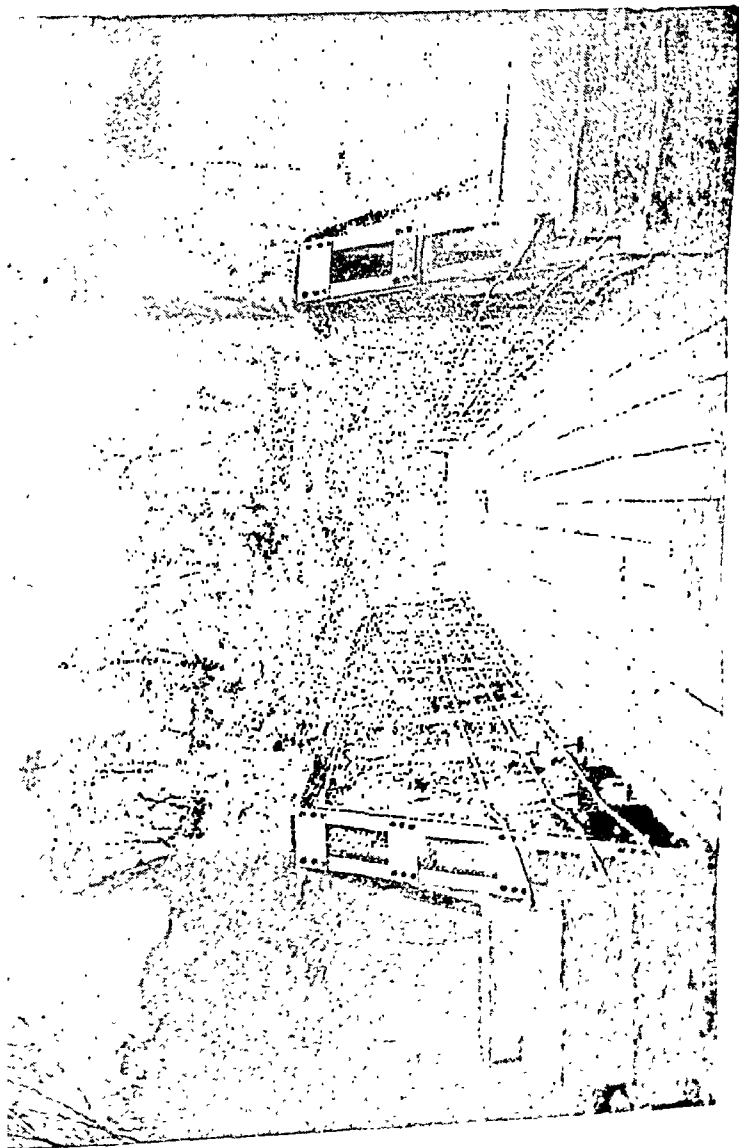
मील भी न चलती थी, थकान से घबराने लगी। बड़ी मुश्किल
ज्यों-त्यों करके दोपहर को नहरिया के पड़ाव पर पहुँचे। यहां दो-
ार दूकानें हैं। आटा-दाल और घी मिल जाता है। यहां पहुँचकर
मने भोजन बनाया और खा-पीकर विश्राम किया। नहरिया की
ूकानें अम्ब से ४ मील हैं। सायंकाल यहाँ से चल कर आगे ४
ील पर जुआर नामक पड़ाव पर आ गये और रात में यहीं विश्राम
केया। ये कोई पक्के पड़ाव नहीं। यहाँ कोई डाक-बँगला या रेस्ट-
ाउस भी नहीं। दो-चार दूकानें हैं, जिनमें भोजन की सामग्री मिल
जाती है। कभी कभी दूध भी मिल जाता है। दूकानदारों से दो पैसा
किराये पर चारपाई मिल जाती है। भोजन बनाने के लिए निर्वाह के
योग्य बर्तन भी दूकानदार ही दे देता है। मुसाफिर को अपने साथ
बर्तन लाने की आवश्यकता नहीं। पीने का पानी दूर खड्ड से लाना
पड़ता है। इसलिए कई परोपकारी धनियों ने जगह जगह पर पानी
पिलाने के लिए प्याऊ रख छोड़े हैं।

२५ अगस्त को सवेरे फिर चले। ४ मील चलने पर कलोह
नाम का पड़ाव मिला। जुआर से ३ मील आगे तक रास्ता बहुत
अच्छा है। चील के हरे-भरे जंगल में से होकर सड़क जाती है
परन्तु कलोहे से १ मील इधर से उतराई आरम्भ हो जाती है और
सड़क टूटी-फूटी एवं पत्थरों से भरी हुई है। कलोहा नीचे खड्ड के
किनारे पर बसा है। यहाँ रात को अच्छी ठंड हो जाती है। अगस्त
के दिनों में भी दो कम्बल ओढ़कर भीतर सोना पड़ता है। यहाँ
तीन-चार दूकानें, डाकघर और स्कूल है। यहाँ से बाईं ओर नादौ

रियासत कोई १२ मील के अन्तर पर है। हम जिस समय कलोहा पहुँचे, उस समय लोग अभी जागे नहीं थे। हमारा मार्ग यहाँ से बाईं ओर था। पहाड़ में प्रत्येक पड़ाव को अमुक स्थान की दूकानें कहकर पुकारते हैं, जैसे नहरिया की दूकानें, जुआर की दूकानें और कलोहा की दूकानें। इसका कारण यह है कि पहाड़ के गाँव दो-दो, तीन-तीन मील में फैले रहते हैं। गाँव के सब घर एक जगह इकट्ठे नहीं बने होते। एक घर से दूसरे घर का अन्तर, अनेक अवस्थाओं में, फ़र्लाङ्ग-फ़र्लाङ्ग, दो-दो फ़र्लाङ्ग तक का होता है। इसलिए यह कहना कठिन होता है कि अमुक गाँव यह है। सड़क के किनारे पड़ाव पर दो-चार दूकानें होती हैं। उन्हीं को उस गाँव की दूकानें कहते हैं।

कलोहा से आगे खड्ड पारकर फिर चढ़ाई आरम्भ हुई। कोई चार मील चलने पर फिर उतराई आई। कलोहा से ५ मील की दूरी पर गरली नाम का एक सुन्दर क़स्बा है। गरली से पहले एक पथरीला खड्ड मिलता है। खड्ड पारकर चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। तब गरली आती है। गरली का बाज़ार पक्का है। दूकानें भी काफ़ी हैं। यहाँ के एक परोपकारी सज्जन, स्वर्गीय राय बहादुर मोहनलाल, ने अपने ख़र्च से, कोई दो मील से पानी लाकर, सारे नगर में पानी के नल लगवा दिये हैं। पहाड़ मैदानों को पानी देते हैं, परन्तु स्वयं पहाड़ों में पानी की बड़ी कमी रहती है। इन जल-नलों से गरली के लोगों को बड़ा आराम हो गया है। श्री मोहनलाल जी ने यहाँ एक सराय, एक हाई स्कूल, स्त्रियों के लिए एक अस्पताल और एक संस्कृत-पाठशाला भी बनवाई है। इन सब चीज़ों के कारण इस

पहाड़ी प्रान्त में गरली सभ्यता का एक छोटा केन्द्र जान पड़ता है। यहाँ के लोगों ने शिमला आदि में जाकर व्यापार-द्वारा प्रचुर धन संग्रह किया है। यह बात उनकी रहन-सहन और वेष-भूषा से ही प्रकट हो जाती है।

गरली से आगे दो मील तक रास्ता समतल और छायादार है। दो मील पर 'चम्बे का पत्तन' है। यहाँ व्यास नदी को नाव-द्वारा पार करना पड़ता है। हम कोई ७½ बजे सवेरे घाट पर पहुँच गये। परन्तु यहाँ आकर मालूम हुआ कि मनुष्य तो नाव में बैठकर पार जा सकेंगे, परन्तु नदी में अधिक जल हो जाने के कारण वर्षा-ऋतु में खच्चर-घोड़े पार नहीं ले जाये जा सकते। अब बड़ी कठिनाई हुई। आगे कैसे जायँ? मल्लाहों की मिन्नत-समाजत की, इनाम-इकराम देने को कहा कि किसी प्रकार बेड़े में बैठाकर खच्चर पार करा दो, परन्तु वे न माने। यहाँ नदी पार कराने का ठेका है। ठेकेदार ने मल्लाह नौकर रख छोड़े हैं। प्रत्येक मुसाफ़िर से नदी पार करने के लिए दो पैसे लिये जाते हैं। खच्चर-घोड़े के लिए दो आने के लगभग देना पड़ता है। बहुत कहने-सुनने पर ठेकेदार ने कहा कि अच्छा, आप १२ बजे तक यहाँ ठहरें। दोपहर के बाद नदी का पानी कम हो जाता है। तब मल्लाह बेड़ा (बड़ी नाव) डालकर आपके खच्चर पार करा देंगे। अब हम पानी के उतरने की प्रतीक्षा में नदी के घाट पर बैठे। बारह बज गये, एक बज गया, परन्तु पानी कम न हुआ। भूख सताने लगी। यहाँ घाट पर एक दूकान थी, पर उसके पास खाद्य पदार्थ कुछ भी नहीं था। उससे कहकर पकौड़े

बनवाये। उन्हें खाकर जब पेट की ज्वाला कुछ शान्त हुई तब मैं और इन्द्रसिंह जी तो वहीं ठहर गये, शेष सबको नाव में नदी के पार भेज दिया, ताकि वे धीरे-धीरे पैदल चलते हुए अगले पड़ाव पर पहुँचें। हमारी धारणा थी कि तीसरे पहर पानी कम हो जायगा तो हम खच्चरों को पार कराकर तेज़ चलते हुए अगले पड़ाव पर पहुँच जायँगे। स्त्रियाँ धीरे-धीरे चलती हैं, इसलिए उनको पहले भेज देना ठीक समझा। परन्तु तीसरे पहर घटने के बजाय पानी और बढ़ने लगा। जान पड़ता था, ऊपर के पहाड़ों में वर्षा हुई है।

चम्बे के पत्तन पर नदी का पाट बहुत छोटा है और पानी बड़ी तेज़ी से बहता हुआ चट्टान से टकराता है। पानी के वेग से वहाँ नाव के बे-क़ाबू हो जाने का भय रहता है, इसलिए मल्लाह लोग पूर के समय वहाँ नाव, विशेषतः बड़ी नाव, नहीं डालते। वहाँ से कोई पाँच मील नीचे जाकर गोपीपुर-देहरा नाम का एक स्थान है। वहाँ नदी का पाट बहुत चौड़ा हो गया है। वहाँ हर समय नाव चल सकती है। इसलिए लाचार होकर हमने खच्चरों को तो गोपीपुर के पत्तन (घाट) से नदी पार करने के लिए भेज दिया और आप कुछ कम्बल, दरियाँ और चादरें आदि कंधे पर लादकर सायंकाल ४ बजे नदी के पार हुए। अगला पड़ाव, ज्वालाजी, वहाँ से ६ मील है। अधिकांश रास्ता समतल और साफ़ है। जहाँ चढ़ाई है, वहाँ भी वह तीखी नहीं। हम दोनों द्रुतगति से चलते हुए कोई डेढ़ घंटे में ज्वालाजी जा पहुँचे। इस समय बूँदा-बाँदी हो रही थी। अठारह-

ीस सेर का बोझा उठाकर द्रुतगति से पहाड़ पर चढ़ने के कारण
रात्रि को मुझे बड़ी थकावट मालूम हुई। टाँगों में ग्लियाँ
पड़ गईं।

ज्वालामुखी

ज्वालाजी हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ चट्टान में कई जगह दरारें हैं। जिस चट्टान में ये दरारें हैं उस पर एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर के कलश पर सोने का मुलम्मा है। मन्दिर के भीतर बायें कोने में सबसे बड़ी अग्नि-शिखा है। इसको 'हिङ्गलाज' कहते हैं। मन्दिर के अन्दर एक बड़ा हवन-कुण्ड है, जिसमें अनेक छोटे-छोटे छिद्रों से दाह्य वायु निकलती है। मन्दिर के बाहर चारों ओर संगमरमर का सुन्दर फ़र्श है। एक ओर पानी का बड़ा कुण्ड है, जिसमें प्रत्येक समय ऊपर से पानी गिरता रहता है। कुण्ड के ऊपर छत है।

प्रधान मन्दिर से थोड़ा ऊपर पानी का एक छोटा-सा डबरा है। इसे 'गोरख टिब्बी' अर्थात् गुरु गोरखनाथ का टीला कहते हैं। यहाँ ठंडे पानी में से गैस (वायु) के बुदबुदे इस प्रकार निकलते हैं जैसे वह उबल रहा हो। डबरे में जहाँ पानी है उससे थोड़ा ऊपर दीवार में से दाह्य वायु निकलती है। उसको जब दियासलाई दिखाई जाती है तब वह लौ के रूप में जलने लगती है।

मन्दिर से कोई आधा मील ऊपर अर्जुन नागा का मन्दिर है। मन्दिर के नीचे खड्ड में जल के दो नमकीन झरने हैं। मन्दिर में कोई देव-मूर्ति नहीं। इस ज्वलन्त अग्नि-शिखा की ही पूजा होती है।

ज्वालाजी एक छोटा-सा क़स्बा है। यहाँ अँगरेज़ी मिडिल स्कूल और अस्पताल भी है। हलवाइयों की भी अनेक दूकानें हैं। फ़र्श पत्थर का है। यहाँ बन्दरों का बड़ा भारी उत्पात है। ये खाने-पीने की वस्तुएँ और वस्त्र आदि उठा ले जाते हैं।

ज्वालाजी में यात्रियों के ठहरने के लिए कोई सराय अथवा धर्म-शाला नहीं है। यात्री लोग प्रायः पंडों के मकानों में ही ठहरते हैं और वहाँ आराम भी अच्छा रहता है। हम भी यहाँ श्री रोशनलाल के मकान में ठहरे। श्री रोशनलाल एक सुपठित और मिलनसार नवयुवक हैं। गत वर्ष ही इनसे मेरा परिचय हो गया था। मैंने इनसे स्पष्ट कह दिया था कि मेरा उद्देश देशाटन-द्वारा केवल ज्ञान-वृद्धि तथा मनोरंजन करना है। मैं जाति-भेद का भी विरोधी हूँ। यदि आप एक मनुष्य या अधिक से अधिक एक हिन्दू के नाते से मुझे अपने यहाँ ठहराने को तैयार हों तो मैं ठहर सकता हूँ। मेरी धारणा थी कि कट्टर-पंथी पंडा-पुरोहित जात-पाँत-तोड़क का नाम सुनकर ही छिः-छिः चिल्ला उठेगा; परन्तु श्री रोशनलाल जी का सौजन्य देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। वे बोले, कोई बात नहीं; आपके विचार कुछ भी हों, आप मेरे यहाँ ही विश्राम कीजिएगा, यहाँ कोई धर्मशाला नहीं, जहाँ आप ठहर सकें। मैं वैसा लालची पंडा नहीं, जो केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही सब काम करता हो। उनके इन उदार विचारों से परिचित होने के कारण ही मैंने अपनी स्त्री से कह रक्खा था कि यदि आप हमसे पहले ज्वालामुखी पहुँच जायँ तो श्री रोशनलाल जी के यहाँ जाकर डेरा डालना। जब मैं और इन्द्रसिंह जी पीछे से पहुँचे

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि रोशनलाल जी ने उनके रने के लिए एक सुखद स्थान का प्रबन्ध कर दिया था।

रात्रि को रोशनलाल जी के बड़े भाई श्री भैरवदत्त जी से भेंट । इनके गुणों का मुझे पहले पता न था। वार्तालाप करने पर लूम हुआ, आप 'सरस्वती' के पुराने ग्राहक हैं। आपने अपने षार्थ से लड़कियों के लिए एक पाठशाला और लड़कों के लिए एक कृत-विद्यालय खोल रक्खा है। आप अच्छे सुविज्ञ और स्वदेशा-क सज्जन हैं। इन दोनों भाइयों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता ई।

कहते हैं, जब सम्राट् अकबर ज्वालामुखी देखने आया तब उसने न दरारों के मुँह पर लोहे के तवे लगाकर इनको बन्द कर देने की ष्टा की। परन्तु जब इसमें उसे सफलता न हुई तब उसने एक नहर नवाकर इन दरारों पर पानी डाला। परन्तु इससे भी वे अग्नि-ाखायें न बुझीं। वे एक जगह छोड़कर दूसरी जगह फूट निकलीं।

मन्दिर के हाते में एक ओर सिक्खों का 'ग्रन्थ साहब' भी खुला ह्ता है। सुना है, इसके 'भाई' को मन्दिर की भेंट में से कुछ अंश लता है। सिक्खों के कुँवर नौनिहालसिंह ने मन्दिर को एक रजत-ण्डित सुन्दर फाटक भेंट किया था। यह अब तक मौजूद है और ाल्पविद्या की दृष्टि से एक दर्शनीय वस्तु है।

२६ अगस्त को हमने ज्वालाजी में ही विश्राम किया। सवेरे आठ-ौ बजे के लगभग निक्काराम भी खच्चर लेकर गोपीपर के पत्तन से ा पहुँचा। इस दिन यहाँ बूँदा-बाँदी होती रही।

रसोई बनाने में कष्ट तो हुआ, परन्तु इतनी यात्रा करने के कारण भूख खूब लग रही थी, इसलिए साधारण-सा भोजन करके भी इतना आनन्द आया कि वह सब कष्ट भूल गया।

मैं पहले कह चुका हूँ कि पहाड़ में पीने के पानी की बड़ी कमी रहती है। एक तो नदियों और खड्डों का पानी लोग गंदा कर देते हैं, उनके किनारे लोग मल-मूत्र कर देते हैं, दूसरे खड्ड और नदी इतने नीचे होते हैं कि वहाँ से पानी लाने में पर्याप्त श्रम पड़ता है। इसलिए 'काँगड़ा-वेली-रेलवे' के स्टेशनों पर रेलवे-विभाग ने लोहे की बड़ी बड़ी टङ्कियाँ बना रक्खी हैं। वे पठानकोट या नीचे के किसी दूसरे स्टेशन से रेल में पानी लाकर भर दी जाती हैं। यात्री और स्टेशन के कर्मचारी नहाने-धोने और पीने के लिए वहीं से पानी लेते हैं। प्रत्येक स्टेशन पर वाटर वर्क्स का प्रबन्ध किया जाता तो बड़ा खर्च पड़ता।

काँगड़ा उपत्यका का मनोहारी दृश्य

२८ अगस्त को सवेरे पानी बरस रहा था कि हम सब ८ बजे की गाड़ी में योगेन्द्र-नगर के लिए रवाना हो गये। निक्के को खाली इक्का लेकर योगेन्द्र-नगर पहुँच जाने को कह दिया। 'काँगड़ा-वेली-रेलवे' अतीव शोभायुक्त सुन्दर पहाड़ी दृश्यों में से होकर जाती है। भारत में कोई भी रेल-पथ हिमाच्छादित गिरिमाला से इतना निकट नहीं है, जितना यह रेल-पथ है। बहुतेरे स्थानों पर पन्द्रह सहस्र फ़ुट से भी अधिक ऊँचे शैल-शिखर इस रेल-पथ से दस मील से भी कम अन्तर

रह जाते हैं। ये शैल-शृङ्ग वर्ष में छः मास से भी अधिक काल तुषार से ढँके रहते हैं। उपत्यका में से होकर दौड़ती हुई गाड़ ाे के सामने एक अद्भुत और मनोरम दृश्य उपस्थित करती है ने की पहाड़ियाँ एक दूसरे के बाद ऐसी उठती दिखाई देती हैं नो सागर की लहरें एक दूसरे के पीछे भागती और खेलती चर ती हों। दृष्टि बिना किसी विघ्न-बाधा के एक ऐसी गिरिमाला र । पड़ती है जो उसके अंचल में फैली हुई उपत्यका से तेरह सह ट की ऊँचाई तक उठती चली गई है। प्रकृति की नानाविध दृश्‍ लों का ऐसा आनन्ददायक एवं भव्य मिलान बहुत कम देखने मलता है। नीचे मैदान है जो ग्राम्य-सौन्दर्य तथा शान्ति का ि उपस्थित करता है। खेतों में फसलें खड़ी लहलहा रही हैं। भूमियों का सिंचन उन नहरों-द्वारा होता है जो चिरस्थायी हिमर के नीचे-नीचे बह कर आती हैं। उद्यानों और फलदार पेड़ों के ः जगह जगह ग्रामीण लोगों के घर हैं। हमारी दृष्टि इस सुन्दर ः से उठकर उन भव्य पर्वतों पर पड़ती है जिनकी घाटियों में ः और जल-प्रपात बह रहे हैं। इन पर्वतों के पार्श्व सागौन के जं से ढँके हुए हैं। ऊपर चील के वृक्ष उदास खड़े देख पड़ते हैं। स ऊपर ऐसे स्तर हैं जो या तो हिमावृत हैं या प्रस्तर के ऐसे शंक टीले हैं जिनके बिलकुल सीधा खड़ा होने के कारण उन पर हिम नहीं सकती। ट्रेन सीधे मार्ग पर जा रही हो या घाटियों में लगा रही हो या टीलों की चढ़ाई में किसी ऐसी चट्टान के साथ लगी जा रही हो जिसमें से होकर एक नदी प्रचण्ड गति से

मैदानों पर किसी बड़े नद में निरन्तर गिर रही हो, प्रत्येक अवस्था में गाड़ी की खिड़की से झाँक कर देखते ही सामने उत्तर-दिङ्मण्डल पर एक भव्य और उल्लास-जनक दृश्य ही दिखाई देगा। वहाँ पर्वतों की तुषार-मंडित चोटियाँ भास्कर की रश्मि-माला से जगमगा रही हैं, दृष्टि जहाँ तक काम करती है उनकी पंक्ति पूर्व से पश्चिम तक फैलती चली जाती है। प्रातःकाल के सुहावने समय में यदि उपत्यका का अवलोकन किया जाय तो गिरिमालायें आश्चर्य-जनक और सुन्दर देख पड़ती हैं। इस चित्ताकर्षक और नयनाभिराम प्राकृतिक चित्र के अंचल में गेहूँ अथवा धान की शस्य-श्यामला लहलहाती हुई खेतियाँ अद्भुत शोभा देती हैं। जब यह रेल-पथ दक्षिण की ओर एक बड़ा चक्कर खाकर पुनः उत्तराभिमुख हो धवला धारा के निकट पहुँचता है और पर्वत-शिखर प्रतिक्षण ऊँचे होने लगते हैं और जब दिन का प्रकाश वस्तुओं को निकट कर देता है उस समय यात्री को निश्चय हो जाता है कि प्रकृति का यह अंचल संसार का एक अतीव सुन्दर दृश्य है।

काँगड़ा में हिमाच्छादित गिरिमालायें सारे दृश्य पर छाई हुई देख पड़ती हैं। बड़े-बड़े पर्वत अतीव निर्भीक भाव से अपने अभिमान-पूर्ण सिर आकाश की ओर उठाये चले जाते हैं। उनके पार्श्व में भयङ्कर दरारें हैं। ये पर्वत कुछ तो दूरी के कारण और कुछ शान्ति एवं मुस्कराती हुई घाटी के बीच में आ पड़ने के कारण मध्यम और धुँधले दीखते हैं। पालमपुर और बैजनाथ में तो प्राकृतिक दृश्य और भी अधिक भव्य हैं, क्योंकि यहाँ से गिरिमाला छः-सात मील दूर है और यहाँ केवल अंचल की पहाड़ियों की एक दीवार खड़ी है।

काँगड़ा के क़िले का मोर्चा
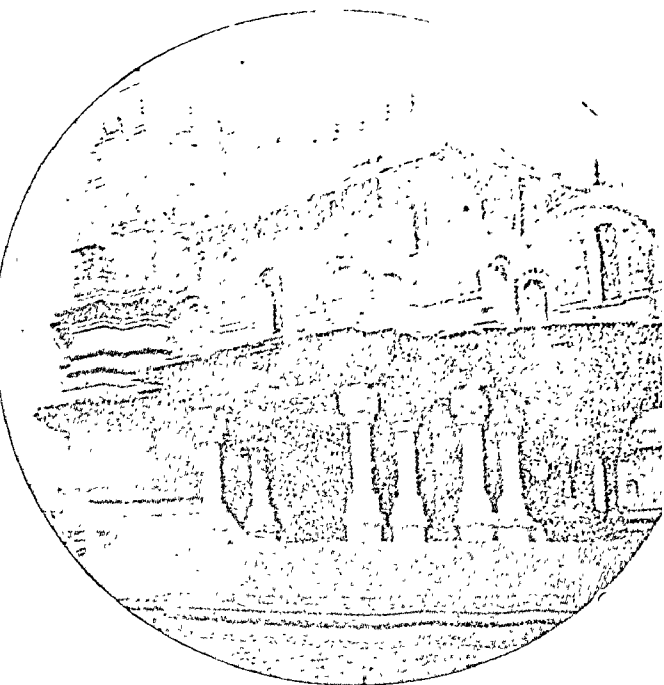
काँगड़ा में देवी के मंदिर का भीतरी दृश्य

यदि यह किसी दूसरी जगह होती तो बड़े बड़े पहाड़ों में गिनी जाती। कारण यह कि इसकी कोई कोई चोटी आठ सहस्र से दस सहस्र फ़ुट तक ऊँची है। यह दीवार हिम और संग खारा की प्राकृतिक प्राचीर को यात्री की आँख से ओझल किये हुए है। जब रेलगाड़ी वैजनाथ स्टेशन से आगे निकलती है तब वातावरण बदलने लगता है। यहाँ रेल-पथ मंडी-राज्य में प्रवेश करता है। जिन चोटियों से यात्री के नेत्र परिचित हो चुके हैं वे अब पश्चिम की ओर रह जाती हैं। इस स्थान पर ट्रेन और ऊँचे ऊँचे पर्वतों के बीच एक और पहाड़ी आ पड़ती है। यह जंगल से ढँकी हुई है। यहाँ यात्री को गाड़ी की दक्षिणी खिड़की से एक सुरम्य एवं सुविस्तृत मैदान दृष्टि-गोचर होता है। बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। इस मैदान से आगे निचले पहाड़ों की बहुत-सी पंक्तियाँ दिखाई देती हैं और उनके साथ ही बहुत-सी रजत-रेखायें भी दृष्टिगोचर होती हैं, जो किसी सुदक्ष चित्रकार की तूलिका का फल जान पड़ती हैं। ये रजत-रेखायें वे नाले और खड्ड हैं जो अपने प्रलयंकरी वेग के साथ उन पहाड़ों से नीचे उतरते चले आते हैं जहाँ अभी मेघ बरस चुके हैं। ये खड्ड नदी में, और नदी से सागर में आत्म-सत्ता को खो देने के आमोद के लिए नाचते, कूदते और उछलते हुए बराबर चले जा रहे हैं। इसके अनन्तर एक मोड़ पर आकर सहसा पहाड़ियों की पंक्ति भङ्ग हो जाती है और उसके बीच से कुल्लू के ऊँचे ऊँचे पर्वत दृष्टिगोचर होते हैं। इन पर्वतों की नई चोटियों और बर्फ़ानी मैदानों से सूर्य की दक्षिणी रश्मि-माला का इतना तीक्ष्ण प्रतिबिम्ब पड़ता है कि आँखें चकाचौंध हो जाती हैं।

पठानकोट से योगेन्द्र-नगर को जाते हुए, चाहे हम पहाड़ी पर हों या मैदान में, पग पग पर काँगड़ा के प्राकृतिक दृश्य इतने सुन्दर और भव्य हैं कि दर्शक आश्चर्य और स्तुति के भव-सागर में लीन होकर अवाक् रह जाता है। काँगड़ा-उपत्यका के पहाड़ और घाटियाँ, नदियाँ और चट्टानें, हिमाच्छादित शैल-शिखर और वन-वैभव ये सब मिलकर यात्री के मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यहाँ खेतियाँ केसरिया वस्त्र धारण किये पर्वतों की गोद में लहलहा रही हैं और अलबेली नदियाँ तथा मधुर कण्ठवाले पक्षी गान-नृत्य में लीन हो नवागत दर्शक को अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करते हैं।

रेलगाड़ी में हमें अनेक प्रकार के लोग मिले। एक मुसलमान सज्जन पहाड़ में जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करने जा रहे थे। बात-चीत करने पर मालूम हुआ, आप लाहौर के रहनेवाले हैं, शिक्षा बहुत कम है। दो-चार टोटके हाथ आ गये हैं, उन्हीं से अच्छा पैसा कमाया है। उन्होंने बताया कि मैं दमा की दवाई मुफ़्त बाँटता हूँ। वह एक नमक है। आप चाहें तो ख़ुद भी बना सकते हैं। मैंने पूछा, किस तरह। उन्होंने बताया—मदार (आक) के पाँच सेर फूल लो। उनमें से आधे मिट्टी के एक बर्तन में रखकर उन पर आधी छटाँक नमक की डली और उसके ऊपर बाक़ी के ढाई सेर फूल डालकर उस बर्तन का मुँह मिट्टी से बन्द कर दो। तब एक गड्ढा खोदकर उसमें डेढ़ मन उपले डालो। इनमें वह मिट्टी का बर्तन इस प्रकार रक्खो कि आधे उपले उसके नीचे रहें और आधे ऊपर। तब उपलों को आग दे दो। जब सब जलकर राख हो जायँ तब बर्तन को निकालकर खोल
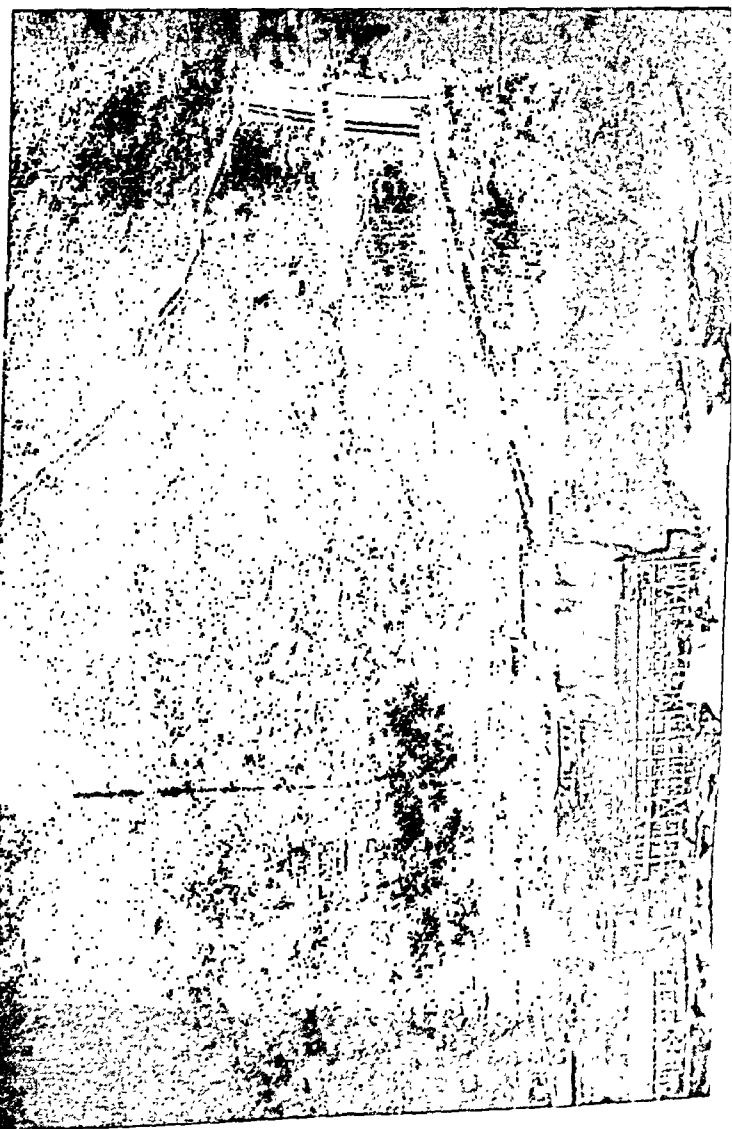
लो। नमक की डली की गोल हो जायगी। यह नमक एक चावल भर रोज़ मक्खन के साथ दो। सात मात्रा खाने से दमा दूर हो जायगा। इस प्रकार बातें करते, पार्वत्य दृश्यों का आनन्द लेते, और वर्षा की बहार देखते हम कोई १२ बजे दोपहर को योगेन्द्र-नगर जा पहुँचे।

योगेन्द्रनगर

योगेन्द्रनगर काँगड़ा वेली रेलवे का अन्तिम स्टेशन है। यह नई बस्ती है। छोटा-सा बाज़ार है। यहाँ आर्य-समाज-मन्दिर, सनातन-धर्म-सभा-मन्दिर और सिक्खों का गुरुद्वारा है। यात्री इन्हीं में से किसी एक में ठहर जाते हैं। हम आर्य-समाज-मन्दिर में ठहरे। भोजन का प्रबन्ध होटल में हो गया। समाज-मन्दिर एक सुन्दर स्थान है। इसके अहाते में एक पहाड़ी नहर बहती है। इससे नहाने और कपड़े धोने का अच्छा सुभीता है।

योगेन्द्रनगर की प्रसिद्धि इसके बिजली-घर के कारण है। बाज़ार से कोई डेढ़ मील की दूरी पर शोनन नाम की एक छोटी-सी बस्ती है। वहाँ पंजाब-सरकार ने पानी से बिजली पैदा करने के लिए एक बहुत बड़ा कारखाना बनाया है। यह स्थान मण्डी-राज्य के अन्तर्गत है। यहाँ उह्ल नाम की एक नदी से पानी लाकर बिजली तैयार की जाती है। जिन हिममय प्रदेशों का पानी बहकर इस नदी में आता है वे ६,००० से लेकर १६,००० फ़ुट की विभिन्न ऊँचाइयों पर हैं। इनका सामूहिक क्षेत्रफल लगभग २५० वर्गमील है। जिस पानी की आव-

श्यकता विद्युच्छक्ति उत्पन्न करने के लिए है वह ६,००० फ़ुट की उँचाई पर से एक ऐसी सुरङ्ग में प्रविष्ट किया गया है जिसका व्यास ९ फ़ुट है। यह सुरंग ढाई मील तक पर्वत के भीतर ही भीतर चली गई है। इसके बाद यह पानी लोहे के बड़े बड़े दो नलों में से होकर १,८०० फ़ुट की उँचाई से 'पावरहाउस' में जाकर गिरता है। इससे ३६,००० किलोवाट विद्युच्छक्ति उत्पन्न होती है। यह इस विशाल बिजली-घर के निर्माण की प्रथम अवस्था है।

प्रकृति ने इस स्थान पर हाइड्रो-इलेक्ट्रिक-पावर की उत्पत्ति के लिए ऐसी विशेषतायें प्रदान कर रक्खी हैं कि एक छोटा-सा बाँध लगा देने से इस बिजली की मात्रा बढ़कर ७०,६०० किलोवाट तक पहुँच जायगी। यह इस कारख़ाने की दूसरी अवस्था कहलायेगी।

ज्यों ज्यों कालान्तर में अधिक विद्युच्छक्ति की आवश्यकता पड़ेगी वही पानी जिसका उपयोग पहले पावरहाउस में हो चुका है, तीन मील लम्बी नहर-द्वारा ले जाकर एक स्थान पर १,२०० फ़ुट की उँचाई से दूसरे पावरहाउस में गिरा दिया जायगा। इससे और ४८,००० किलोवाट विद्युच्छक्ति प्राप्त होगी।

अन्दाज़ा लगाया गया है कि इस योजना के संपूर्ण हो जाने से पञ्जाब के ४७ नगरों को ५ पाई प्रतियूनिट के हिसाब से विद्युच्छक्ति दी जा सकेगी। बिजली की इस प्रचुरता से पञ्जाब के इन नगरों में कृषि एवं उद्योग-सम्बन्धी आवश्यकतायें भी पूरी हो जायँगी। इससे २५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी।

उह्ल नदी से जहाँ पानी लिया गया है वहाँ जाने के लिए बिजली

के पावरहाउस के निकट सीधे खड़े पहाड़ पर रेल की पटरी के सदृश एक पथ बनाया गया है। उस पर बिजली का ट्रक (छकड़ा) चलता है। जो लोग देखने के लिए ऊपर जाना चाहते हैं उन्हें आठ आने के काग़ज़ पर एक 'बाँड' लिखना पड़ता है। इस ट्रक के तीन स्टेशन हैं। किसी किसी जगह तो यह मार्ग इतना सीधा खड़ा है कि डर लगता है कि यदि ट्रक का रस्सा टूट जाय तो ट्रक पहाड़ की चोटी से सीधा कई सहस्र फ़ुट नीचे जा गिरे। हम भी इस ट्रक पर सवार होकर पर्वत पर चढ़े। हम सबका एक ही 'बाँड' से काम चल गया, प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग 'बाँड' नहीं भरना पड़ा। चित्र में ट्रक का मार्ग और पानी के दो नल साफ़ दीख रहे हैं।

(२)

२९ अगस्त को निक्का खच्चरों को लेकर योगेन्द्रनगर आ पहुँचा। बूँदा-बाँदी बराबर हो रही थी, इसलिए आगे चलना कठिन था। योगेन्द्रनगर के आर्य-समाज के प्रधान श्रीयुत गुरुदास रामजी हमारे 'जात-पाँत-तोड़क-मण्डल' के प्रेमी और मण्डल की मुखपत्रिका 'क्रान्ति' के ग्राहक निकले। उन्होंने रात्रि को मेरे व्याख्यान का प्रबन्ध कर दिया। यद्यपि आकाश मेघाच्छादित था, तो भी श्रोतागण अच्छी संख्या में आ गये। मैंने कोई सवा घंटे तक वर्णभेद की हानियाँ बताते हुए उसे शुद्धि, अछूतोद्धार और संगठन के मार्ग में भारी रुकावट सिद्ध किया। इसके बाद जनता से प्रश्न करने को कहा गया। योगेन्द्रनगर की सनातन-धर्म-सभा के मंत्री महाशय ने

कुछ प्रश्न किये, जिनका उत्तर दिया गया। इस वाद-विवाद में जीत-हार का भाव काम नहीं कर रहा था, बरन हिन्दू-जाति की अवस्था को उन्नत करने के उपायों पर एक प्रकार से प्रेमपूर्वक विचार-विनिमय हो रहा था। सनातन-धर्म-सभा के मंत्री महाशय का व्यवहार बहुत ही सज्जनोचित था। श्रीयुत गुरुदास रामजी के उद्योग से यहाँ 'मण्डल' की पुस्तकें अच्छी बिकीं। इधर हिन्दी का प्रचार नहीं के बराबर होने पर भी डाक्टर अम्बेडकर-रचित 'जाति-भेद का उच्छेद' नामक पुस्तक की कई प्रतियाँ निकल गईं।

योगेन्द्रनगर से कुल्लू को तीन मार्ग जाते हैं। एक तो मण्डी होकर और दूसरा भब्बू की जोत से और तीसरा गूमा, दरङ्ग, कटौला और बजौरा होते हुए। मण्डी के रास्ते मोटरलारी जाती है। दूसरे मार्ग में पहले योगेन्द्रनगर से चलकर १३ मील पर झटिङ्गरी का पड़ाव मिलता है। झटिङ्गरी से ११ मील आगे शिल बधवानी, उससे १२ मील आगे कड़ाओं, और उससे ८ मील आगे सुल्तानपुर (कुल्लू) है। भब्बू की घाटी सागर-तल से १०,००० फुट ऊँची है। यह सारा मार्ग पर्वतों और वनों में से होकर जाता है, इसलिए यहाँ गर्मी का नाम तक नहीं। प्राकृतिक दृश्य बड़े रमणीक हैं। हमारा विचार इसी मार्ग से कुल्लू जाने का था। परन्तु यहाँ पहुँचने पर पता लगा कि वर्षा के कारण मार्ग बहुत खराब हो गया है। रास्ते में कीचड़ है। कीचड़ में ऐसी छोटी छोटी अगणित जोंकें हैं जो उछल कर पाँवों और टाँगों में लग जाती हैं। उनका पता तभी लगता है जब वे रक्त पीकर फूल जाती हैं। इनके अतिरिक्त

भालुओं और डाकुओं का भी त्रास बढ़ गया है। सबसे बढ़कर कठिनाई यह है कि जब से लारी का मार्ग खुला है, मब्बू का मार्ग उजड़ गया है। अब इधर पड़ावों पर खाद्य-सामग्री भी नहीं मिलती। हमारे साथ स्त्रियाँ और बच्चे थे। इसलिए हमने इस मार्ग से जाने का विचार छोड़ दिया। तीसरा मार्ग योगेन्द्रनगर से उरला, उरला से दरङ्ग, दरङ्ग से कटौला, कटौला से बजौरा और बजौरा से कुल्लू है। हमने इसी मार्ग से चलने का निश्चय किया।

३० अगस्त १९३७ को सवेरे मेरी स्त्री और भतीजी लारी में सवार हो गईं, क्योंकि वे थक गई थीं। कुल्लू तक एक सवारी का किराया ३|||-) लगा। शेष हम सब पैदल चले। बूँदा-बाँदी हो रही थी, इसलिए गर्मी से बचाव रहा। बारह मील जाने पर उरला नाम का स्थान मिला। यहाँ मंडी-राज्य का डाक-बँगला और सराय है। परन्तु सराय बिलकुल जीर्ण अवस्था में थी। खाने को भी यहाँ कुछ न मिला। योगेन्द्रनगर से हम रोटियाँ बनवा लाये थे। वही यहाँ बैठकर खाईं। पहाड़ का दृश्य सुन्दर था। चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। यहाँ एक बावली पर हिन्दी-अक्षरों में एक शिला-लेख देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बनवानेवाले सज्जन का नाम था श्री हेमप्रभ ठेकेदार। पंजाब में ऐसे शुद्ध संस्कृत नाम बहुत कम सुनाई देते हैं। उरला में थोड़ा विश्राम करने के बाद हम आगे चल पड़े और ऊला, पहदर और नारला आदि छोटे छोटे स्थानों में से होते हुए ८ मील चलकर रात में कुल्लू पहुँचे। कुल्लू में ठहरने के लिए हमें एक दूकान का साफ़-सुथरा बरामडा मिल गया। हम

अपना असबाब अभी भली भाँति रखने भी न पाये थे कि मूसलधार वर्षा होने लगी। जल-स्थल एक हो गया। यहाँ केवल एक ही दूकान थी। उससे आटा, दाल, घी आदि लेकर रोटी बनाई। २० मील चलने और पर्वतों की स्वच्छ वायु के कारण भूख खूब लग रही थी। रोटी बड़ी मीठी और स्वादिष्ट जान पड़ी। दूकानदार का नाम चौधुरीराम था। रात को पीने के लिए हुकुमचन्द के घर से दूध भी मिल गया। सुना है, पहले यहाँ कई दूकानें थीं। परन्तु जब से मोटरगाड़ी चलने लगी, सब बर्बाद हो गईं। योगेन्द्रनगर से बैठकर मुसाफ़िर सीधा मण्डी जा ठहरते हैं, इसलिए दूकानें नहीं चलतीं।

रात भर पानी बरसता रहा। सवेरे बन्द हुआ। मैं प्रातः उठकर घूमता-घूमता सड़क से थोड़ा ऊपर एक मकान में गया। इसका स्वामी तो मर चुका था, पर उसकी विधवा स्त्री और पुत्र हुकुमचन्द मौजूद थे। हुकुमचन्द की माता ने बड़े सत्कार के साथ मुझे ताज़ा दुहा हुआ दूध गिलास भरकर दिया। मैंने अभी हाथ-मुँह भी नहीं धोया था। इसलिए धन्यवाद-पूर्वक लौटाना चाहा। परन्तु उस देवी के आग्रह करने पर मुझे पीना ही पड़ा। इन पहाड़ी लोगों का आतिथ्य-भाव देखकर मेरे मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। तब हुकुमचन्द की बाल-विधवा बहन भी आ गई। यह लड़की बड़ी सुशील और सुसभ्य थी। इसके बाल-वैधव्य को देख बड़ा दुःख हुआ। हमने अपनी लड़कियों को भी इनसे मिलाया। यह घर कभी अच्छा सम्पन्न था। यहाँ की सभी दूकानें इनकी थीं। गाँव में इनकी भूमि भी बहुत

थी। परन्तु हुकुमचन्द के पिता के देहान्त से इनका काम अब प्राय: खिसक गया है।

३१ अगस्त को हम कुल्लू से आगे चले। हलकी-हलकी बूँदें पड़ रही थीं। रात की भारी वर्षा से सड़क टूट गई थी। सड़क पर पानी की नहरें बह रही थीं। गूमा के निकट से हमने एक पगडंडी के रास्ते जल्दी दरङ्ग पहुँचने का निश्चय किया, क्योंकि सड़क कुछ घूमकर आती थी। पगडंडी धान के खेतों में से पर्वत के ऊपर होकर गई थी। रास्ते में बिछलाहट, लम्बी घास, टूटे हुए वृक्ष, कँटीली झाड़ियाँ, खड्ड, बड़े बड़े पत्थर तंग कर रहे थे। एक जगह पानी की धारा इतने ज़ोर से बह रही थी कि गार्गी के पाँव से एक चप्पल निकलकर बह गया। जितनी देर में झुककर वह पकड़ा जाता, उतनी देर में पानी का खर-स्रोत उसे बहाकर सहस्रों फ़ुट नीचे ले जा चुका था। कुछ दूर आगे चलने पर पगडंडी का निशान लुप्त हो गया। वहाँ बड़े बड़े पेड़ों और 'ढंखों' के टूटने और नालों के गिरने से रास्ते का कुछ पता ही नहीं चलता था। चारों ओर घना वन था। जल-प्रपातों के शब्द से कुछ सुनाई न देता था। भूख लग रही थी। कुछ सूझता न था कि किधर जायँ। जगह-जगह पर फिसल कर गिर जाने का भय था। कुछ दूर पर नीचे एक बड़ा खड्ड देख पड़ा। टूटे हुए वृक्षों और हज़ारों मन के बड़े बड़े प्रस्तर-खण्डों पर से लाँघते हुए बड़ी कठिनाई से किसी तरह उसके किनारे पर पहुँचे। परन्तु जल-धारा इतने प्रबल वेग से बह रही थी कि उसको पार करना भयावह जान पड़ता था। हम हैरान थे कि क्या करें और किधर जायँ। इतने में निक्का सामने

खच्चर लिये आता दिखाई दिया। उसको आवाज़ देकर बुलाया। वह खड्ड के दूसरे किनारे पर पहुँचा, तब हमने जल-धारा में पैर डालने का साहस किया। खड्ड फिसलनेवाले पत्थरों से भरा था और उन पर गहरा पानी विद्युत्-वेग से बह रहा था। नरेन्द्र का पाँव फिसल गया और वह बहने लगा। परन्तु उसका हाथ मैं पकड़े हुए था, इसलिए वह बच गया। नहीं तो दुर्घटना हो जाने में कोई कसर बाक़ी न थी। निक्के से पता लगा कि हम रास्ता भूल गये हैं। रात की वर्षा से पगडंडी नष्ट हो गई थी। अब दरङ्ग से कटौला जाना कठिन था। हम खड्ड से ऊपर चढ़ने लगे और कुछ ही देर में ऊपर सड़क पर जा पहुँचे। आज के कष्ट से हमने यह निश्चय किया कि पहाड़ों में पगडंडियों से कभी नहीं जायँगे। यहाँ से थोड़ी दूर चलकर दरङ्ग का पड़ाव मिला।

दरङ्ग कुल्लू से केवल ४ मील है, परन्तु हमें यहाँ पहुँचने में कोई ४ घंटे लग गये। दरङ्ग में एक हलवाई की दूकान थी। उससे रोटी बनवाई। कुछ केले और सेब भी मिल गये। यहाँ नमक की एक खान है। हम उसे देखने गये। परन्तु रात की वर्षा से पहाड़ गिर जाने से उसका मुँह बन्द हो गया था, इसलिए हम उसके भीतर न जा सके। साल्ट-इंस्पेक्टर श्रीयुत पुरुषोत्तमराम एक सज्जन व्यक्ति हैं। उन्होंने हमें खान का प्राकृतिक नमक और उसे साफ़ करके कलमों के रूप में बनाया हुआ नमक दोनों दिखाये। प्राकृतिक नमक काले रंग का था और साफ़ किया हुआ रुई-सा सफ़ेद। इससे मंडी-राज्य को अच्छी आय हो जाती है। पहले गूमा में भी नमक की खान थी, परन्तु कुछ काल से वह बन्द कर दी गई है।

दरङ्ग में दोपहर का भोजन करके हम आगे चल पड़े। साढ़े तीन मील चलने पर टाँड्डू नाम का स्थान मिला। यहाँ एक ही दूकान है। यहीं आटा, दाल, घी, दूध, कपड़ा, दियासलाई आदि सब चीजें मिलती हैं। यहाँ आने पर पता लगा कि आगे सड़क टूटी हुई है। खच्चर-घोड़े की बात तो दूर रही, खाली मनुष्य भी पार नहीं जा सकता। इसलिए यहीं ठहरना पड़ा। यहाँ कोई सराय या धर्मशाला नहीं थी। एक पहाड़ी मकान था, जिसके निचले भाग में ढोर बँधते थे और ऊपर के तल्ले में दूकानदार की कुछ फालतू चीजें पड़ी थीं। ऊपर के तल्ले का बरामडा अच्छा था। उसी को साफ़ करके हमने अपने बिछौने लगा लिये। रात को केवल दूध पीकर निर्वाह किया।

रात को फिर ज़ोर की वर्षा हुई, परन्तु सवेरे बन्द हो गई। टाँड्डू एक बहुत सुन्दर स्थान है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। नहाये-धोये पर्वत धानी वस्त्र पहने और सिर उठाये खड़े थे। गगन-चुम्बी चोटियाँ बादलों से ढँकी हुई थीं। धान के खेत लहरा रहे थे। मक्की पक रही थी। पंजाब में केले के पत्ते तनिक बड़े होते ही फट जाते हैं। परन्तु यहाँ बिलकुल साबूत थे। गत की वर्षा के कारण सड़क पर पानी की धारायें बह रही थीं। पर्वत-शिखरों के टूटने और विशाल वृक्षों के गिरने से सड़क रुक गई थी। पहाड़ टपक रहे थे। नालों में पूर आ रहा था। सड़क पर पानी के खड्ड बड़े ज़ोर से गिर रहे थे। हम न आगे जा सकते थे, न पीछे लौट सकते थे। सवेरे का भोजन वहीं तैयार किया। इस स्थान में सादा भोजन खाकर भी वह आनन्द आया जो [illegible]

व्यञ्जन खाकर भी नहीं आता। यहाँ १) सेर घी और -)॥ सेर आटा मिला।

सवेरे ही श्रीयुत इन्द्रसिंह और रणवीर दोनों आगे रास्ता देखने गये। मैं भी एक पगडंडी के रास्ते जंगल में से होकर खड्ड पर पहुँचा। पानी बहुत गहरा था। एक पहाड़ी मनुष्य लम्बी लाठी के सहारे कमर तक पानी में से होकर पार चला गया। परन्तु मुझे साहस नहीं हुआ। मैं वापस टाँड्ह लौट आया। इन्द्रसिंह कोई १२ बजे लौटे। उन्होंने आकर समाचार दिया कि मण्डीनगर से कोई दो मील इधर सड़क टूटी है। खड्ड बड़े जोर से उस पर गिर रहा है। परन्तु मण्डी के फ़ौजी सिपाही उसकी मरम्मत कर रहे हैं। उन्होंने वचन दिया है कि हम तुम्हें पार करा देंगे।

अतएव १ सितम्बर ३७ को तीसरे पहर हम टाँड्ह से चल पड़े। रास्ते में कोई चार मील चलने के बाद वह जगह मिली, जहाँ खड्ड ने सड़क को तोड़ डाला था। हम तो पैदल खड्ड को पार कर गये, परन्तु खच्चरों को, असबाब उतारकर, खाली लँघाना पड़ा। फ़ौजी सैनिकों ने हमारा असबाब उठाकर दूसरे किनारे पर पहुँचा दिया। खड्ड में से लाँघते समय गिरकर बह जाने का डर बराबर लगा रहता था। टाँड्ह से मण्डी ६ मील है। रास्ता व्यास नदी के किनारे किनारे है। हम सायंकाल वहाँ पहुँच गये और आर्यसमाज-मन्दिर में जाकर टिके। मण्डी योगेन्द्रनगर से ३५ मील है। यहाँ व्यास नदी पर एक पुल बँधा है। उस पर से होकर नगर में जाना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति से दो पैसे कर लिया जाता है।

व्यञ्जन खाकर भी नहीं आता। यहाँ १) सेर घी और ~)॥ आटा मिला।

सवेरे ही श्रीयुत इन्द्रसिंह और रणवीर दोनों आगे रास्ता देख गये। मैं भी एक पगडंडी के रास्ते जंगल में से होकर खड्ड पहुँचा। पानी बहुत गहरा था। एक पहाड़ी मनुष्य लम्बी लाठी सहारे कमर तक पानी में से होकर पार चला गया। परन्तु मु साहस नहीं हुआ। मैं वापस टाँडू लौट आया। इन्द्रसिंह कोई बजे लौटे। उन्होंने आकर समाचार दिया कि मण्डीनगर से कोई मील इधर सड़क टूटी है। खड्ड बड़े ज़ोर से उस पर गिर रहा है परन्तु मण्डी के फ़ौजी सिपाही उसकी मरम्मत कर रहे हैं। उन्हें वचन दिया है कि हम तुम्हें पार करा देंगे।

अतएव १ सितम्बर ३७ को तीसरे पहर हम टाँडू से चल पड़े रास्ते में कोई चार मील चलने के बाद वह जगह मिली, जहाँ खड्ड सड़क को तोड़ डाला था। हम तो पैदल खड्ड को पार कर ग परन्तु खच्चरों को, असबाब उतारकर, ख़ाली लँघाना पड़ा। फ़ौ सैनिकों ने हमारा असबाब उठाकर दूसरे किनारे पर पहुँचा दिय खड्ड में से लाँघते समय गिरकर बह जाने का डर बरा लगा रहता था। टाँडू से मण्डी ६ मील है। रास्ता व्यास नदी किनारे किनारे है। हम सायंकाल वहाँ पहुँच गये और आर्यसमा मन्दिर में जाकर टिके। मण्डी योगेन्द्रनगर से ३५ मील है। य व्यास नदी पर एक पुल बँधा है। उस पर से होकर नगर में ज पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति से दो पैसे कर लिया जाता है।
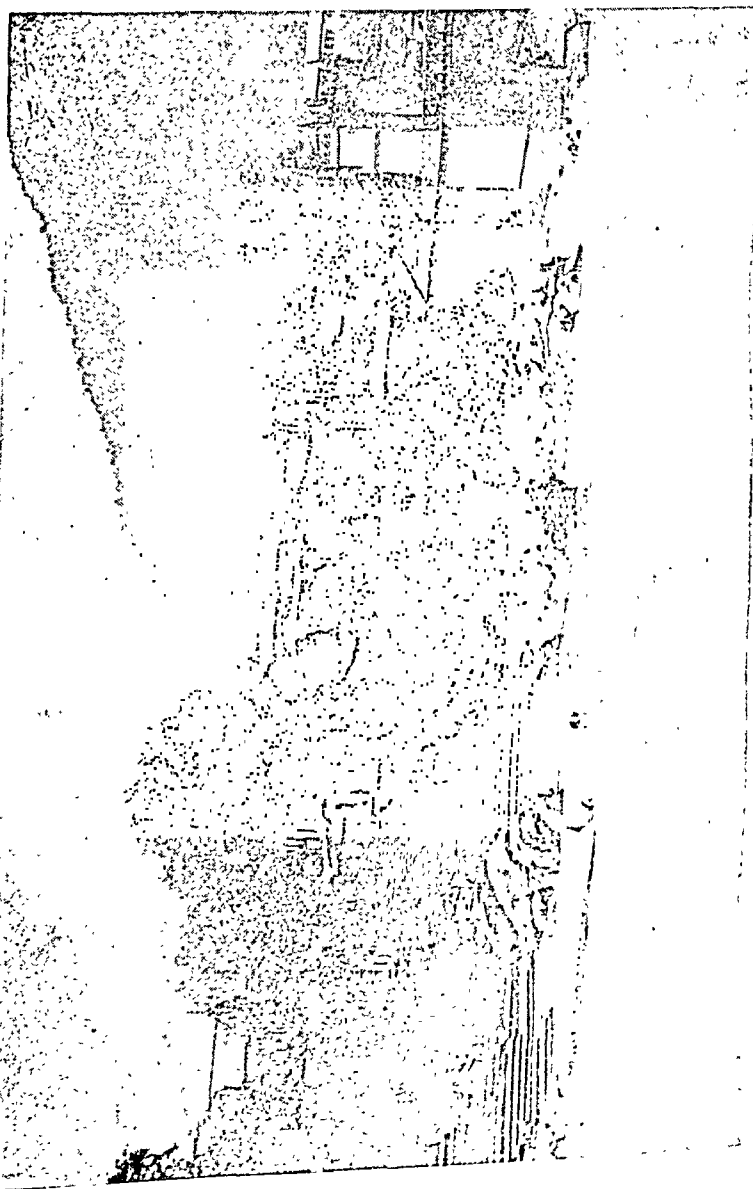
मण्डी

यह मण्डी-राज्य की राजधानी है। व्यास नदी के किनारे पर
ी है। छोटा-सा सुन्दर नगर है। एक हाई स्कूल है। सारे राज्य में
न्दुओं की संख्या ९५ प्रतिसैकड़ा से भी अधिक है। पंजाब भर में
वल यही एक राज्य है, जिसकी अदालत की भाषा उर्दू के स्थान
हिन्दी है। यद्यपि यहाँ के लोगों की भाषा में संस्कृत-शब्दों की
चुरता है और ये लोग अपना निजी कार-बार भी हिन्दी-अक्षरों में
ी करते थे, तथापि आज से कोई दो वर्ष पहले तक यहाँ भी उर्दू ही
अदालत की भाषा थी। अदालती समन आदि तो हिन्दी में छपे होते
हैं, परन्तु कचहरी के मुंशी उनमें लोगों के नाम अब भी उर्दू-लिपि
में लिखते हैं। यहाँ के स्त्री-पुरुषों के नाम संस्कृत-भाषा के देखकर
मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। एक महाशय का नाम हरिवल्लभ, आर्यसमाज
के मंत्री महोदय का नाम पिनाकपाणि और एक ठेकेदार महाशय का
नाम हेमप्रभ था। स्त्रियों के नाम कोकिला, कला, ललिता, अयोध्या
आदि सुनने को मिले। ऐसे नाम पंजाब में नहीं होते। मण्डी का
चौहटा बाजार प्रसिद्ध है। कई अच्छे अच्छे मन्दिर हैं। मण्डी में
रबड़ी और दही बहुत सस्ता और अच्छा मिलता है।

पिछले दिनों यहाँ एक 'मण्डी मण्डी-वालों के लिए' का आन्दो-
लन चला था। मण्डीवाले कहते थे कि राज्य के बड़े बड़े पद हमें
ही मिलने चाहिए—राज्य के बाहर के लोगों को लाकर उन पर
नियुक्त नहीं करना चाहिए। इस आन्दोलन में बहुत-से मनुष्यों को
जेल जाना पड़ा और स्त्रियों को लाठियों के प्रहार सहने पड़े। परन्तु

यह सफल न हो सका। इसकी विफलता का एक बड़ा कारण जाति-भेद था। मण्डी के केवल खत्री लोग ही अधिकतर सरकारी नौकरी करते हैं। उन्होंने ही इस आन्दोलन को चलाया था। उन्हीं की स्त्रियाँ सत्याग्रह करने निकली थीं। परन्तु दूसरी जाति के लोग उनके साथ इस कार्य में सम्मिलित न हुए। इससे यह आन्दोलन ब गया। यदि खत्री एक अलग जाति न होकर एक ऐसा जन-मुदाय होता जिसका दूसरे लोगों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध ता तो अवश्य ही मण्डी की सारी प्रजा अपने भाई-बहनों को जेल ते और डण्डे खाते देख समवेदना से उनके साथ सम्मिलित हो ती। अब एक खत्री के प्रति सिवा दूसरे खत्री के और किसी को ई सहानुभूति नहीं पैदा होती, क्योंकि सांसारिक व्यवहार की दृष्टि दूसरे हिन्दुओं की खत्रियों के साथ कोई भी चीज़ साझे की ीं है।

मण्डी में पहुँचकर हमें मालूम हुआ कि ३० और ३१ अगस्त मध्यवर्ती रात्रि को जो वर्षा हुई थी उससे व्यास नदी की उपनदी ी खड्ड में इतनी ज़ोर की बाढ़ आई कि उसमें मनुष्य, गायें, भैंसें, रियाँ, छप्पर, ट्रंक, खाट, कपड़े, संदूक़, लकड़ी आदि सभी चीज़ें कर व्यास में आ गिरीं। धन और जन दोनों की घोर हानि हुई। वर्षा से सड़क के टूट जाने के कारण जो लारी योगेन्द्रनगर से अगस्त को कुल्लू के लिए चली थी वह तो उसी दिन वहाँ पहुँच थी, परन्तु उसके जो मुसाफ़िर रात में विश्राम करने के लिए ी में ठहर गये थे वे फिर दूसरे दिन आगे न जा सके। वे अभी

यहीं पड़े थे। जिस लारी में मेरी स्त्री सवार हुई थी उसी में लुधियाना के श्रीयुत भक्तराम जी डोगरा एडवोकेट, उनकी धर्मपत्नी और दिल्ली के तीन प्रोफ़ेसर भी योगेन्द्रनगर से बैठे थे। मेरी स्त्री तो उसी दिन मण्डी से कुल्लू के लिए चल दी थीं, परन्तु ये महाशय मण्डी में ठहर गये थे। रात को वर्षा हो जाने से मण्डी से आगे दो-तीन जगह सड़क टूट गई। लारी का चलना असम्भव हो गया। इसलिए ये अभी यहीं पड़े थे। न ये आगे जा सकते थे और न पीछे, क्योंकि दोनों ओर सड़क टूट गई थी। वर्षा और पत्थरों के कारण हम सबके जूते टूट गये थे। यहाँ उनकी मरम्मत कराई और कुछ नये मोल लिये।

२ सितम्बर को लोगों के मना करने पर भी हम मण्डी से आगे चल पड़े। मण्डी से एक मार्ग कटौला होकर दुलची कण्ढी से बजौरा और कुल्लू को जाता है। यह रास्ता कुछ छोटा भी है। सन् १९२२ में जब मैं कुल्लू गया था तब इसी रास्ते से गया था। तब मोटर का निचला मार्ग बना भी न था। परन्तु अब यह मार्ग उजड़ गया है। सारा आवागमन निचले मोटर के मार्ग से ही होता है। पहले ख़याल आया कि इसी कण्ढी के मार्ग से चलें, क्योंकि मोटर की सड़क के टूट जाने के समाचार मिल चुके थे। परन्तु बाद को किसी ने सुझाया कि मोटर का मार्ग टूटा है तो उसकी मरम्मत भी हो रही होगी। टूटी जगहों को पार करने के लिए मज़दूरों की सहायता भी मिल सकेगी। परन्तु यदि दुलची कण्ढी का मार्ग कहीं से टूट गया तो वहाँ न तो कोई सहायता मिलेगी और न कोई

खाद्य सामग्री ही। एक बार टूट जाने पर फिर महीनों उस सड़क की कोई सुधि ही नहीं लेता। इसलिए अन्त को मोटर के मार्ग से ही चलना निश्चित हुआ। इस मार्ग से कुल्लू ४३ मील था। मण्डी से आगे कोई छः मील तक जगह जगह सड़क बुरी तरह टूटी हुई थी। लारी का चलना तो दूर, घोड़ा-खच्चर भी नहीं जा सकते थे। पैदल मनुष्य झाड़ियों और पत्थरों को पकड़ पकड़ कर बड़ी कठिनाई से चलते थे। पहाड़ की सड़क मैदान की सड़क की तरह नहीं होती। वह पहाड़ को काटकर बनाई जाती है और प्रायः नदी के किनारे किनारे होती है। इसलिए उसके एक ओर पर्वत की ऊँची दीवार होती है और दूसरी ओर सैकड़ों फुट नीचे नदी या खड्ड। सड़क जब टूटती है तब रास्ते में एक बड़ी गहरी खाई बन जाती है, जिसमें यदि मनुष्य गिर पड़े तो लुढ़कता और पत्थरों से टकराता हुआ सीधा नदी में जा पहुँचे। एक जगह इसी प्रकार सड़क टूटी थी। हमने खच्चरों का असबाब उतार कर खाली पशुओं को पार कराया। फिर असबाब को आप उठाकर दूसरी ओर ले गये। इससे कुछ दूर आगे, मण्डी से ४ मील के अन्तर पर, एक जगह बड़ा भारी 'ल्हासा' (पर्वत-खण्ड) सड़क पर आ गिरा था। इससे रास्ता रुक गया था। मिट्टी के ढेर में भारी दलदल थी। घोड़े-खच्चर का तो कहना ही क्या, खाली मनुष्य भी घुटनों तक धँस जाता था। इस दलदल में जगह जगह चिकलाहट भी थी। पेड़ उखड़े पड़े थे। पानी टपक रहा था। अच्छी बात यह थी कि इसे साफ़ करने के लिए मज़दूर लगे हुए थे। इन्होंने पैदल यात्रियों के लिए

एक सँकरा-सा मार्ग बनाया था। उस मार्ग से पहले चढ़ाई थी, फिर एकदम दूसरी ओर को उतराई थी। यहाँ कोई तनिक भी फिसल जाय तो सीधा सैकड़ों फुट नीचे व्यास नदी में जा पहुँचे। यहाँ हमने खच्चर और घोड़े पर से असबाब उतारकर मज़दूरों की सहायता से उन्हें पार ले जाने का यत्न किया। खच्चर बड़ा सयाना जन्तु है। वह बहुत देख-भालकर पैर रखता है। थोड़ा-सा रास्ता भी मिल जाय तो पार चला जाता है। सो हमारा खच्चर सकुशल इस 'ल्हासे' पर से होकर दूसरी ओर चला गया। परन्तु टट्टू बड़ा मूर्ख और दुर्बल था। वह बड़ी कठिनाई से ल्हासे पर चढ़ाया जा सका। परन्तु शिखर पर पहुँचकर उसके हवास उड़ गये। आगे की ओर सड़क पर उतरने के बजाय वह नदी की ओर गिर पड़ा। निक्के ने चिल्लाना आरम्भ किया, हाय! मेरा घोड़ा गया, हाय! मेरा घोड़ा मरा। सौभाग्य से वहाँ बहुत-से मज़दूर मौजूद थे और घोड़े पर हमारा असबाब नहीं था। अन्यथा घोड़ा तो मरता ही, साथ ही हमारा बहुमूल्य असबाब भी नदी की भेंट हो जाता। निक्के के चिल्लाने पर मज़दूरों ने दौड़कर घोड़े को पकड़ लिया और बड़ी कठिनाई से उसे उठाकर पार लँघाया। मार्ग में हमें बहुत-सी लारियाँ, छकड़े और खच्चर, रास्ता टूट जाने के कारण, रुके हुए मिले। हम कोई १२½ बजे दोपहर को मण्डी से १२ मील चलकर पण्डोह के पड़ाव पर पहुँचे।

पण्डोह एक छोटा-सा सुन्दर स्थान है। डाक-बँगला भी है। पाँच-छः दूकानें हैं। दूध और आटा-दाल मिल जाता है। यहाँ जीवनी नाम का एक बड़ा खड्ड बाईं ओर से आकर व्यास नदी में मिला है।

वर्षा-काल में यह खड्ड दूकानों तक चढ़ आता था और बड़ी हा
करता था। परन्तु जब से पत्थरों का एक बड़ा बाँध बाँध दिया ग
है तब से बहुत बचाव हो गया है। जीवनी और व्यास के संग
पर एक पुल बनाया गया है। इसी पर से होकर आगे कुल्लू को जा
हैं। जीवनी खड्ड में स्नान करके और कपड़े धोकर बड़ा आनन्द
आया। कपड़े बहुत अच्छे निखरे।

आज हमने यहीं पड़ाव किया। पण्डोह में श्रीयुत नोखूराम ठेकेदार
एक सज्जन पुरुष हैं। पहले जंगल और सड़कों के ठेकेदार थे। उस
काम में ख़ूब पैसा कमाया था। पर अब दूकान करते हैं। इनके सुपुत्र
श्रीयुत भूपचन्द जी कालेज के विद्यार्थी हैं। मण्डी से पण्डोह आते हुए
रास्ते में हमारी इनसे भेंट हो गई थी। पण्डोह पहुँचने पर इन्होंने हमें
अपना आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करने पर विवश किया। इनका मकान
सड़क से कोई दो फ़र्लाङ्ग ऊपर था। हमारा असबाब दूकान में रख-
वाकर ये हमें अपने घर ले गये। रात भी हमें वहीं सुलाया। बिछौने
तक अपने पास से दिये। इनके घर की देवियाँ हमारी लड़कियों से
इस प्रकार हिल-मिल गईं कि हमें ऐसा जान पड़ने लगा, मानों यह
अपना ही घर है। इनके आर्य-शिष्टाचार ने मुझे ऐसा अनुभव कराया,
मानों मैं कलियुग में नहीं, सत्ययुग में जी रहा हूँ। रात में ख़ूब कहा-
नियाँ सुनते-सुनाते रहे। मण्डी की बोली लाहौर की बोली से थोड़ी
भिन्न है। परन्तु हिन्दी से ख़ूब मज़े से काम चल गया।

पहाड़ों के देहाती घर प्रायः तङ्ग और गन्दे होते हैं। नीचे के
खण्ड में लोग पशु बाँधते हैं और ऊपर के खण्ड में आप रहते हैं।

छतों के नीची होने से सारा मकान धुएँ से काला हो जाता है। परन्तु श्री भूपचन्द जी का मकान देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह ख़ूब साफ़-सुथरा और खुला है। मध्य में एक बड़ा चौक है। चौक में पत्थर का एक बड़ा कुंड है। कुंड के मध्य में एक ऊँचे चबूतरे पर एक बड़े गमले में तुलसी का पेड़ लगा है। चौक के चारों ओर, थोड़ा-सा बराण्डा छोड़कर, कमरे बने हैं। रसोई-घर एक ओर अलग है। मकान की छत, बँगले की छत के सदृश, इस प्रकार ढालू है कि उस पर पानी अथवा बर्फ़ नहीं ठहर सकता। स्वच्छता की दृष्टि से यह अपनी उपमा आप ही है। इसके चारों ओर हरी-भरी खेती और फलदार पेड़ लहलहा रहे हैं। देखकर मन बहुत प्रसन्न हुआ। पण्डोह में, सभी दूसरे पहाड़ी गाँवों के सदृश, घर एक दूसरे से दूर दूर हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानों पहाड़ पर कोठियाँ बनी हों। श्रीयुत भूपचन्द और उनके परिवार ने जिस शुद्ध प्रेम से हमें आतिथ्य-दान दिया उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

३ सितम्बर १९३७ को हम सवेरे पण्डोह से चले। भूपचन्द जी हमें दो मील तक छोड़ने आये। पण्डोह से आगे १३ मील पर औट का पड़ाव है। रास्ता व्यास नदी के किनारे-किनारे चला गया है। बड़ा साफ़-सुथरा है। सवेरे ख़ूब शीतल पवन चल रहा था। जगह जगह पर्वतों से पानी टपक रहा था। नदी के दूसरे किनारे पर बड़े बड़े जल-प्रपात गिर रहे थे। दूर से ये चाँदी की श्वेत रेखाओं के समान चमकते थे। सड़क की बाईं ओर सैकड़ों फ़ुट ऊँची हरित पर्वतमाला थी और दाईं ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे व्यास नदी प्रचण्ड

वेग से बह रही थी। इन सब बातों के कारण, दोपहर होने पर भी चलते समय बिलकुल गरमी नहीं मालूम होती थी। दोपहर को औट पहुँचकर देवी शन्नो और बालकृष्ण के भोजनालय में हमने हलुआ पूरी बनवाकर खाई।

औट में तीन-चार दूकानें हैं। उनमें से दो रोटी और मिठाई की हैं। यहाँ से व्यास नदी के बायें किनारे के साथ साथ शिमला को सड़क गई है। शिमला यहाँ से १०३½ मील है। औट में व्यास के पार जाने के लिए एक पुल बना है। आज तक हमें कोई भी यात्री पैदल चलता हुआ नहीं मिला था। सभी लारियों में लदकर जा रहे थे। परन्तु यहाँ मुझे करनाल के पुराने मित्र सरदार उजागरसिंह वकील मिले। वे शिमला से पैदल आये थे और कुल्लू जा रहे थे। दोपहर को थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर हम फिर आगे चल पड़े और सायंकाल ९ मील चल कर अगले पड़ाव बजौरा में पहुँचे।

यहाँ मण्डी-राज्य की सीमा समाप्त हो जाती है। बजौरा ब्रिटिश इलाक़ा है। यहाँ से कुल्लू-उपत्यका आरम्भ होती है। यह एक खड्ड के किनारे बसा है। यहाँ एक सरकारी सराय, डाक-घर, तार-घर और स्कूल है। हलवाई या रोटी की कोई दूकान नहीं। सराय में =) देने पर एक कमरा मिल जाता है। सराय साफ़-सुथरी है। शौच और स्नान के लिए नीचे खड्ड बहता है। मण्डी से कटौला और दुलची घाटी में से होकर जो मार्ग कुल्लू को आता है वह यहाँ आकर मोटर की सड़क में मिल जाता है। यहाँ गढ़गा स्टेट के मेव-नाशपाती के फलोद्यान हैं।

यहाँ मुझे अपने गाँव के दो लड़के—पुन्ना और रामचन्द—मिले। गई चार-पाँच वर्ष से ये यहाँ खेती का काम करते हैं। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। पानी की प्राकृतिक नहरें बहती हैं। भाजी-तरकारी प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होती है। इन्होंने एक घोड़ा रख छोड़ा है। इस पर लादकर रोज़ या तीसरे दिन कुल्लू ले जाते हैं। जो तरका-रियाँ नीचे मैदान में शरद्-ऋतु में होती हैं वे यहाँ इस समय थीं। कई वर्ष से ये लड़के घर नहीं गये थे। इनकी बहन और विधवा माता ने मुझे कहा था कि ये कई वर्ष से घर नहीं आये; इन्हें प्रबल प्रेरणा करना कि एक बार घर आकर मिल तो जायँ। मैंने दोनों भाइयों को बुलाकर समझाया और उनसे वचन लिया कि वे दशहरे के बाद अवश्य माता से मिलने जायँगे।

४ सितम्बर १९३७ को सवेरे बजौरा से चलकर ३ मील पर भूँतर नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ बहुत-सी दूकानें हैं। हलवाई और रोटीवाला भी है। डाक-घर, स्कूल, दो सरायें और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की डिस्पेंसरी भी है। जंगलात के रेंजर आदि कर्मचारी यहाँ रहते हैं। अच्छी रौनक़ की जगह है। यहाँ एक बड़ा भारी मैदान है। इसे प्रगान कहते हैं। मेरा अनुमान है कि इस स्थान का नाम भूतल (या भूमितल) भी इसके मैदान होने के कारण ही है। क्योंकि इसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं और बीच में यह विस्तृत सम तल भूमि है। यहाँ जून मास में दो दिन मेला लगता है। यह पार्वती नदी व्यास से आकर मिली है। दोनों के संगम पर लो का एक बड़ा पुल है। इसके ऊपर से होकर जाने से यह झूलने लगा

है। इसके मध्य में खड़े होकर नदी की बहार देखें तो बड़ा आनन्द आता है। गर्मी में भी हिम-शीतल पवन के झोंके आते हैं। यह पुल श्रीयुत 'गार्डन डफ़ डम्बार आव एकरगिल केथन्स' नाम के किसी परोपकारी सज्जन ने अपनी जेब से ५० सहस्र रुपये लगाकर जनता के लिए बनवा दिया था। परन्तु यह ५० सहस्र से वह पूरा नहीं बन सका था। इस पर सरकार ने ३० सहस्र रुपया और डालकर सन् १८८० में इसे सम्पूर्ण किया था। पुल के दायें द्वार पर एक शिलालेख में पुल का सारा इतिहास दिया गया है। इस पुल को पार करके पार्वती उपत्यका में जाते हैं।

कुल्लू

भूँतर में दस-पन्द्रह मिनट विश्राम करके हम आगे चले। कुल्लू यहाँ से केवल ६ मील है। रास्ते में जापानी फलों का एक बागीचा मिला। इसे एक मुसलमान खानसामे ने लगा रक्खा है। वहाँ से कुछ फल लेकर खाये। परन्तु ठीक पके न होने के कारण मुझे कुछ स्वादिष्ठ नहीं लगे। आगे मौह्ल नाम का एक खड्ड मिला। यहाँ हमारे गाँव के ढेरूराम नामक एक व्यक्ति की दूकान मिली। ढेरूराम कोई ४० वर्ष से यहीं आकर बस गये हैं। यहाँ की एक स्त्री से उन्होंने विवाह कर लिया है। ये अब देश में नहीं जाते हैं। बरसों बाद इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मौह्ल से आगे कोई दो-ढाई मील पर कुल्लू है। हम पौने १२ बजे वहाँ पहुँच गये। वर्षा से सड़क टूटने के कारण जब से लारी का आना-जाना बन्द हुआ है

ाब से मण्डी से कुल्लू पहुँचनेवाला पहला यात्री-दल हमारा ही था। ारी के जो यात्री मण्डी में रुक गये थे वे अभी तक यहाँ नहीं हुँचे थे।

कुल्लू व्यास नदी के दायें तट पर बसा है। समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई ४,००० फ़ुट है। इसके चार भाग हैं। एक सुलतानपुर जो असली शहर है और सबसे ऊँची जगह पर अवस्थित है; दूसरा अखाड़ा जो सुलतानपुर से नीचे एक बड़ा बाज़ार है; तीसरा सर्वरी जो अखाड़े से भी नीचे है; चौथा ढालपुर का मैदान। सबसे अधिक रौनक़ अखाड़ा बाज़ार में है। यहीं आकर मोटर ठहरते हैं। ढालपुर के मैदान में सरकारी दफ़्तर, अस्पताल, स्कूल, डाक-तार-घर हैं। बड़ी सुन्दर जगह है। देवदारु के पेड़ बड़े सुहावने ढङ्ग से लगाये गये हैं। दशहरे के दिनों में यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

कुल्लू में यों तो डाक-बँगला और रेस्ट-हाउस है, परन्तु उनका किराया और दूसरे खर्च इतने अधिक हैं कि केवल धनी लोग ही उनका उपयोग कर सकते हैं। साधारण लोगों के लिए यहाँ सराय है, पर वह उतनी साफ़ नहीं। हमें तो एक मित्र के द्वारा एक ख़ाली मकान 'अखाड़े' में मिल गया। वहीं हमने डेरा डाल दिया। कुल्लू सब-डिवीज़न का सबसे बड़ा सरकारी कर्मचारी यहाँ रहता है। यहाँ बड़ा अच्छा बाज़ार है, होटल है, हलवाई की दूकानें हैं।

५ सितम्बर १९३७ को रविवार था। हम आर्य-समाज के सत्संग में सम्मिलित होने के लिए सुलतानपुर गये। परन्तु मन्दिर बन्द था। श्रीयुत मेलाराम जी बज़ाज़ यहाँ के प्रसिद्ध आर्य-समाजी हैं।

उनसे मिले तो उन्होंने मन्दिर खोला। तब हम सबने मिलकर हवन किया। तत्पश्चात् जात-पाँत-तोड़क-आन्दोलन और कुल्लू में इस्लाम की दिन पर दिन बढ़ती हुई लहर के सम्बन्ध में बात-चीत हुई। आर्य-समाज के प्रधान श्रीयुत प्राणनाथ जी एडवोकेट ने आर्य-समाज के लिए मण्डल का साहित्य एवं डाक्टर अम्बेडकर-विरचित 'जाति-भेद का उच्छेद' नामक पुस्तक खरीदी।

कुल्लू के इर्द-गिर्द कई नाशपाती और सेब के बाग़ीचे हैं। इनमें से कुछ तो अँगरेज़ों के हैं और कुछ देशवासियों के। अँगरेज़ लोग फल महँगा देते हैं, देशवासियों के यहाँ सस्ता मिल जाता है। रोड़ा पाँधा और बंसी पाँधा के फलोद्यान प्रसिद्ध हैं। कुल्लू से छः मील पर ५,००० फ़ुट की ऊँचाई पर बन्दरौल नाम का एक ग्राम है। वहाँ शीतल जल का एक उत्तम झरना है। वहाँ श्रीयुत ए० एच० ली का प्रसिद्ध सेब-उद्यान है। कहते हैं जैसा बढ़िया सेब इस बाग़ीचे में होता है, वैसा समूचे कुल्लू में अन्यत्र कहीं नहीं होता। कुल्लू में फल इतनी बहुतायत से होते हैं कि आप किसी भी बाग़ीचे में चले जाइए, आपको पेट भर कर खाने के लिए फल मुफ़्त में मिल जायँगे। यहाँ से कोई दो लाख रुपये के फल प्रतिवर्ष बाहर भेजे जाते हैं। मेरी ... हमसे पहले ही, ३० अगस्त को, कुल्लू पहुँच चुकी थी। उसने हमारे लिए दो-तीन टोकरी नाशपाती और सेब लेकर रख लिये थे। हमने खूब खाये। नाशपाती यहाँ एक आना सेर और सेब दो आने सेर मिल जाता है। नाशपाती बहुत मीठी थी, परन्तु सेब अभी कच्चे थे। तोड़ कर रखने से पन्द्रह-सोलह दिन में अच्छे खस्ता—

आटे की तरह भुरभुरे—हो जाते हैं। ये ठीक कार्तिक में पकते हैं। हमारी सारी मंडली ने इतने फल खाये कि जी ऊब गया।

कुल्लू (सुलतानपुर) नीची जगह पर है। चारों ओर ऊँचे पर्वत । इसलिए यहाँ बहुत ठंड नहीं होती। यहाँ सर्वरी नाम की एक दी व्यास में आकर मिलती है। सर्वरी का पानी कुछ कालिमा ाये है। शायद इसी लिए इसका नाम सर्वरी पड़ा है। कुल्लू जल-ायु की दृष्टि से अच्छा स्थान है, परन्तु स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का ान न होने से अथवा विवशता से लोग नदी के तट पर ही मल-मूत्र त्याग देते हैं। इससे यहाँ इतनी दुर्गन्ध फैलती है कि वस्ती के निकट जो नदी का भाग है वहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। व्यास का पानी हिम-शीतल है। उसके दो लोटे शरीर पर डालना कठिन हो जाता है। परन्तु इस गन्दगी के कारण वहाँ नहाने को जी नहीं चाहता। 'अखाड़ा' बाजार से तनिक आगे एक 'जारू' है। वहाँ स्वच्छ जल का झरना है। प्रायः लोग वहीं नहाते हैं। वैसे व्यास के बर्फ़ानी पानी को पीकर तबीअत बहुत प्रसन्न होती है। किनारे पर इतना गन्दा रहते भी नदी का जल नील स्वच्छ देख पड़ता है।

६ सितम्बर १९३७ को हम सब पुरुष तो सवेरे ५½ बजे पैदल चल पड़े, परन्तु लड़कियों के लिए लारी में आने का प्रबन्ध कर दिया। लारी कुल्लू से दोपहर को चलती थी। कुल्लू से आगे मनाली का मार्ग व्यास नदी के साथ साथ है और अधिकांश समतल और छायादार है। कुल्लू से ८ मील पर रायसन है। वहाँ दो-तीन बड़े बड़े फलोद्यान हैं। रायसन से आगे कोई ढाई मील पर डोबी और

वहाँ से आगे डेढ़ मील पर कटराईं है। इन दोनों स्थानों पर बड़े बड़े फलोद्यान और डाक-घर हैं। डोबी में श्री डानल्ड का बाग़ीचा है। डाक-घर भी उस बाग़ीचे के फलों के पार्सल बाहर भेजने के लिए बनाया गया है। कुल्लू से लेकर कटराईं तक दूध या हलवाई की कोई दूकान नहीं। हाँ, स्थान स्थान पर सेब जरूर मिल जाते हैं। यहाँ एक मिडिल स्कूल और तीन-चार दूकानें हैं। अँगरेज़ों एवं धनी लोगों के लिए कई महँगे होटल भी हैं। सड़क से कोई दो फ़र्लाङ्ग नीचे उतर कर एक नाला बहता है। स्नान आदि के लिए वहीं जाना पड़ता है।

कटराईं से, एक ओर, दो मील के अन्तर पर 'नगर' है। यहाँ गर्मियों में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर रहते हैं। यहाँ भी फल के कई बाग़ीचे हैं। बड़ी ठंडी जगह है। यहीं रोरिक-म्यूज़ियम है।

मनाली

कटराईं में रोटी की एक रद्दी-सी दूकान थी। वहाँ हमने भोजन बनवाकर खाया। फिर थोड़ी देर विश्राम करके कोई १२½ बजे आगे चल पड़े और सायङ्काल कोई ४½ बजे ११ मील चलकर मनाली जा पहुँचे। मनाली कुल्लू से २३ मील है। कुल्लू में मेरे मित्र श्री गुरुदयालसिंह जी नायब तहसीलदार हैं। उनकी कृपा से यहाँ पी० डब्ल्यू० डी० के रेस्ट-हाउस में ठहरने का प्रबन्ध हो गया।

मनाली समुद्र-तल से ६,२०० फ़ुट ऊँचा है। इससे कोई दो मील पहले कुल्लू की ओर 'क्लाथ' नाम का और कोई डेढ़ मील

आगे रोहटाँग की ओर 'वशिष्ट' नाम का गरम पानी का झरना है।
। इनको तीर्थ मानकर इनमें स्नान करना पुण्य समझते हैं।
नाली बड़ा सुन्दर स्थान है। व्यास के तट पर बसा है। सैर के
ए बड़ी अच्छी जगह है। मीलों तक देवदारु और मीठे खनो
स्टनट) के वृक्षों का घना जङ्गल है। मनाली से थोड़ा पहले एक
टा-सा खुला मैदान है। वहाँ देवदारु के पेड़ों का झुरमुट बड़ा ह
नोहर दृश्य उपस्थित करता है। सामने हिमालय की तुषारमंडि
टियाँ चाँदी के मुकुट के समान चमक रही हैं।

मनाली में धनी लोगों के ठहरने के लिए अँगरेजों के कई बँगले
कोठियाँ और विश्राम-गृह हैं। इनका किराया ७५) मासिक से लेक
१००) मासिक तक है। इनके स्वामी बेनन-बन्धु हैं। कुल्लू-उपत्य
में इसी प्रकार के कई प्राइवेट मकान भी हैं, जहाँ ५) रोज़ रहने औ
खाने का खर्च देना पड़ता है। परन्तु साधारण स्थिति के लोगों
रहने के लिए मनाली में न कोई सराय है और न कोई होटल
डाक-बँगले के निकट दो-तीन टूटी-फूटी मैली कोठरियाँ-सी हैं। ड
बँगले के खानसामा को कुछ भेंट चढ़ाने पर उनमें दो-तीन दिन ठह
की आज्ञा मिल जाती है। बाजार में दो ढाबे या रोटी की दूकानें
हैं। इनमें से श्रीयुत मिहिरचन्द का ढाबा अच्छा है। हमने
खाने का प्रबन्ध किया। वे दो पैसे प्रति चपाती के हिसाब से
लेते थे। घी अपना लेकर देना होता था। दो-तीन जून हमने
ही रोटी बनाई, वह ढाबे की रोटी से कहीं अधिक स्वादिष्ट
सस्ती थी। यहाँ कुल्लू (अखाड़ा) की अपेक्षा ठंड बहुत अधिक

रात को चादर और लोई ओढ़कर और किवाड़ बन्द कर भीतर सोना पड़ा।

मनाली में ईसाइयों का लेडी-विलिङ्गडन-हास्पिटल है। सुना है, इसका उद्घाटन करने के लिए लार्ड विलिङ्गडन की धर्मपत्नी हवाई जहाज़ से दिल्ली से सवेरे आकर साँझ को दिल्ली लौट गई थीं।

कुल्लू-उपत्यका अँगरेज़ों को बहुत पसन्द है। यहाँ कई अँगरेज़ बस गये हैं। उनमें से अधिकतर फलों का व्यापार करते हैं। इन्होंने पहाड़ी हिन्दू-स्त्रियों से विवाह कर लिया है। पहले पहल कर्नल वैनन नाम के एक अँगरेज़ सज्जन मनाली में आकर आबाद हुए थे। वे थियासफ़िस्ट थे। उन्होंने एक ब्राह्मण स्त्री से विवाह किया था। वे अब मर चुके हैं, परन्तु उनके तीन पुत्र यहाँ रहते हैं। उनमें से एक सनशाइन आर्चर्ड्स के स्वामी मेजर एच० एम० बेनन हैं, दूसरे न्यूहोम आर्चर्ड्स के स्वामी केप्टन एच० बेनन हैं, तीसरे मिस्टर हर्बर्ट बेनन हैं। इन तीनों भाइयों की स्त्रियाँ भी हिन्दू हैं। वे हिन्दू-देवी-देवताओं की पूजा करती हैं। बेनन-बन्धुओं का अपना झुकाव भी हिन्दू-धर्म की ही ओर है। परन्तु जाति-भेद की रुकावट के कारण हिन्दू-समाज उनको अपने में खपा नहीं सका। अँगरेज़ी नामों के अतिरिक्त इनके किट्टा, मिट्टा आदि देशी नाम भी हैं। ये सज्जन हिन्दू होते हुए भी 'अहिन्दू' हैं।

बेनन-बन्धुओं के अतिरिक्त मनाली में कर्नल जानसन नाम के एक अँगरेज़ रहते हैं। इन्होंने बहुत-सा रुपया लगाकर परोपकारार्थ पानी का एक कुण्ड बनवा दिया है। वहाँ से पीने का शुद्ध जल मय

गोग लेते हैं। रायसन में लेफ़्टिनेंट कर्नल मिनिकन हैं। बन्दरौल में श्रीयुत ली हैं।

कुल्लू का प्रदेश बिलकुल हिन्दू-प्रदेश है। ईसाई और मुसलमान बहुत ही कम हैं। परन्तु कुछ दिनों से इस प्रदेश में इस्लाम का प्रवेश हुआ है। मैदान से मुसलमान खानसामे, बहरे, मौलवी, चपरासी और व्यापारी इधर आकर छोटे छोटे स्थानों में बस गये हैं। उन्होंने इधर की कथित छोटी जाति की स्त्रियों से विवाह कर लिया है। मुसलमानों की जन-संख्या द्रुतगति से बढ़ रही है। कुल्लू-प्रान्त में स्त्रियाँ स्वतन्त्र विचरती हैं। पुरुषों से बात-चीत करने में भी इन्हें कोई संकोच नहीं। दूसरे, यहाँ दरिद्रता का राज्य है। तीसरे, जात-पाँत और छूत-छात की कठोरता पराकाष्ठा को पहुँची हुई है। इन सब कारणों से मुसलमान खानसामों और बहरों के लिए पहाड़ी हिन्दू-स्त्रियों को अपने पंजे में फँसाना बहुत सरल है।

कुल्लू में अस्पृश्यता की भयंकरता यहाँ तक बढ़ी हुई है कि क गाँव ऐसे हैं जहाँ यदि कोई अछूत किसी हिन्दू के मकान को छू तो वह मकान अपवित्र मान लिया जाता है। इस पर वह अभाग अछूत बहुत बुरी तरह पीटा जाता है और दंड-स्वरूप उससे बक लिया जाता है। मनाली में मुझे एक तिब्बती मुसलमान श्री अब्दुर सत्तार मिले। कुल्लू-उपत्यका में इतने देवी-देवता हैं कि यह 'देवता की भूमि' कही जा सकती है। प्रत्येक गाँव का अपना एक देव या देवी है। इन देवी-देवताओं के आपस में विवाह भी होते कई देवियाँ विधवा भी हैं। ये देवता काठ की बनी मूर्तियाँ

ये चाँदी या सोने के चेहरों और रङ्ग-बिरंगे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होती हैं। इनको एकाधिक मनुष्य पालकी की तरह उठाकर चलते हैं। फिर इनका नाच होता है। इनके सामने मन्नतें मानी जाती हैं और इनसे मन की छिपी बातें पूछी जाती हैं। इनके नाम पर मेले होते हैं। दशहरे के अवसर पर कुल्लू में जो भारी मेला होता है उसमें कई सौ देवता इकट्ठे होते हैं। यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों का भी इन देवताओं की अलौकिक शक्ति पर बड़ा विश्वास है।

इन देवताओं के अतिरिक्त इस पार्वत्य प्रदेश में वशिष्ठ, व्यास, लोमश आदि ऋषि भी बहुत हैं। ऐसा जान पड़ता है, मुसलमानों के आक्रमण से डरकर ये देव-ऋषिगण मैदान से भागकर यहाँ आ छिपे हैं। पर अब जब इस्लाम यहाँ भी आ पहुँचा है तब न मालूम यहाँ से भागकर ये कहाँ जा छिपेंगे?

७ सितम्बर १९३७ को तीसरे पहर ४ बजे साँझ का भोजन साथ ले हम मनाली से आगे चले। मोटरकार और लारी केवल दाणा तक आती है। मनाली गाँव का जहाँ बाजार बना है उस स्थान को दाणा कहते हैं। दाणा से आगे व्यास नदी को पुल के द्वारा पार कर सड़क बायें किनारे के साथ साथ जाती है। यह सड़क लाहूल होती हुई लद्दाख पहुँचती है। जिस समय हम चले, थोड़ी थोड़ी बूँदा-बाँदी हो रही थी। कोई तीन मील तक सड़क समतल है। हरे-भरे वृक्ष भी हैं। परन्तु आगे चलकर चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। ५ मील पर रुआड़ नाम का गाँव मिला। यहाँ दो-तीन दूकानें हैं। इस समय जोर से वर्षा हो रही थी, जिससे मार्ग में पाँव

फिसलते थे। अब अँधेरा होना शुरू हुआ। आकाश मेघाच्छन्न था, वर्षा हो रही थी, पाँव फिसलने का भय हर समय लग रहा था, पहाड़ी खड्ड भयङ्कर कोलाहल कर रहे थे, और हम भीगते-फिसलते अँधेरे में चल रहे थे। सड़क की दाईं ओर गगनचुम्बी पर्वत-शिखर खड़े थे, बाईं ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे व्यास नदी दौड़ी जा रही थी। बिलकुल सुनसान था। भेड़-बकरी के रेवड़ों के रखवाले कुत्तों के भयानक शब्द के सिवा और कोई मानव-शब्द सुनाई न पड़ता था। घने जङ्गलों से लदी हुई पर्वतों की ढलानों पर बकरी चरानेवालों ने कहीं कहीं डेरे लगा रक्खे थे। अँधेरे में वहाँ जलती हुई लालटेनें बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थीं। चलते चलते हमारे दो दल हो गये थे। श्रीयुत इन्द्रसिंह, लड़कियाँ और दोनों लड़के आगे चले गये, और मैं तथा मेरी स्त्री खच्चरवाले के साथ पीछे रह गये। मनाली से आगे ९ मील पर राहला है। वहीं आज हमें ठहरना था। परन्तु कोई ८ मील चलने पर एक जगह हमारा टट्टू पहाड़ के नीचे धड़ाम से खड्ड में गिर गया। बड़ी मुश्किल हुई। अँधेरे में कुछ दीख नहीं पड़ता था। खड्ड भयङ्कर शब्द कर रहा था। मैं समझा, बस अब घोड़ा और असबाब दोनों गये। उधर खच्चर रुकता न था, बराबर आगे आगे बढ़ता चला जा रहा था। मेरी स्त्री ने मुश्किल से उसे रोक रक्खा, क्योंकि डर था कि वह धक्का मार कर कहीं उसे भी खड्ड में न ढकेल दे। तब मैं और निक्का लालटेन लेकर टट्टू को देखने गये। वह बड़ी बुरी तरह से गिरा पड़ा था। बड़ी कठिनाई के साथ उसे पूँछ से पकड़ कर उठाया और बाहर निकला। सौभाग्य से वह पानी

में नहीं गिरा था। अँधेरे में आवाज़ से ऐसा जान पड़ता था कि वह बिलकुल सड़क के साथ ही है। परन्तु वास्तव में वह वहाँ से दूर परे था। हमारे लिए यह बड़ी भीषण रात्रि थी। ज्यों-त्यों करके हम राहला पहुँचे। इसकी ऊँचाई ८,५०० फ़ुट है।

राहला में एक बड़ी कठिनाई है। वहाँ न कोई खाने-पीने की दूकान है, न ठहरने के लिए कोई सराय। वहाँ एक पी० डब्ल्यू० डी० का रेस्ट-हाउस है। उसमें ठहरने के लिए कुल्लू के असिस्टेंट इञ्जीनियर से आज्ञा लेनी पड़ती है। परन्तु पहले से ख़याल न रहने से हम यह आज्ञा न ले सके थे। जिस समय हम रेस्ट-हाउस में पहुँचे, वहाँ चौकीदार न था। उसे ढूँढ़ने के लिए कोई मील भर चल कर उसके गाँव में जाना पड़ा। पहले तो वह आने को ही तैयार न था। पर जब वह आया तब उसने रेस्ट-हाउस खोलने से इनकार कर दिया। उसे बहुतेरा समझाया कि वर्षा हो रही है, ग़ज़ब की सरदी है, हम रात को ठिठुर कर मर जायँगे, कुछ दया करो। परन्तु वह एक न सुनता था। मनाली से हमारे साथ गवर्नमेंट कालेज, लाहौर के एक एम० ए० के विद्यार्थी श्रीयुत जमानअली भी आये थे। हैट-पैंटधारी थे। कुल्लू के लोग हैटवाले से बहुत डरते हैं। उन्होंने साहबी ढङ्ग से उसे डाँटना शुरू किया और साथ ही कुछ लालच भी दिखाया। तब उसने रेस्ट-हाउस खोल दिया। भीतर बिछौने बिछाकर हमने मनाली से लाया हुआ भोजन किया। यद्यपि सितम्बर का आरम्भ था, परन्तु सरदी इतनी थी, जितनी लाहौर में दिसम्बर में होती है।

रोहटाङ्ग-रहा

८ सितम्बर १९३७ को सवेरे उठकर रोहटाङ्ग-रहा देखने चले
च्चर-टट्टू को यहीं रहने दिया। राहला से आगे सीधी चढ़ाई है
सी लिए हमने रात को यहाँ आकर रहना उचित समझा था
हला के आगे पर्वत सूखे और बर्फ़ से जले हुए हैं। इन पर पेड़
ौधे बिलकुल नहीं। नंगे खड़े हैं। ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ रहे है
यों-त्यों साँस फूल रही है, सिर चकरा रहा है। कोई एक मी
चलकर मेरी स्त्री ने चलने से जवाब दे दिया। वह वहीं बैठ गई
उसे वापस राहला के रेस्ट-हाउस में चले जाने का परामर्श दे
आगे चलने लगा। यहाँ ऊँचाई पर खड़े होकर जब नीचे की ओ
दृष्टिपात किया तब एक बड़ा ही मनोमुग्धकारी एवं नयनाभिरा
प्राकृतिक दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। देवदारु के घने जङ्गल से ढँके हु
पर्वतों में उछलती, कूदती, गाती और साँप के सदृश बल खा
हुई नदी चाँदी की तरह चमक रही थी। ज्यों-ज्यों हम ऊपर च
रहे थे, त्यों-त्यों चलना मुश्किल होता जा रहा था। रास्ते में जग
जगह भेड़-बकरी लिये 'गद्दी' लोग तम्बू लगाये पड़े थे। इ
भयानक कुत्ते रेवड़ों की रखवाली कर रहे थे। एक स्थान पर इ
होकर बैठी हुई सफ़ेद भेड़ें बहुत ही भली प्रतीत होती थीं।
चार मील ऊपर जाने पर एक बर्फ़ानी नाला मिला। इसमें बर्फ़
एक बड़ी हिमानी पड़ी थी। दूर से ऐसा देख पड़ता था, मानों
का नाला जमा पड़ा हो। हिम धूप से उतनी नहीं पिघलती, जि
वर्षा से पिघलती है। परन्तु इस नाले में गरमी-बरसात ब

महीने कभी समाप्त नहीं होती। मैंने बल्लम से तोड़कर बर्फ खूब खाई। यहाँ से एक मील आगे चलने पर हम रोहटाङ्ग-रहा पर जा पहुँचे। यहाँ एक विस्तृत मैदान है। इसमें एक जगह एक कुण्ड बना हुआ है। इसमें से व्यास नदी निकलती है। कुण्ड पर व्यास मुनि की मूर्ति है। यहाँ प्रचण्ड शीतल हवा चलती है। यात्रियों की रक्षा के लिए यहाँ दो कोठे बने हुए हैं। आँधी-पानी के समय वे इनमें आकर शरण ले सकते हैं। राहला से रोहटाङ्ग केवल ५ मील है, परन्तु इसकी उँचाई १३,२०० फ़ुट है। इसलिए लड़कियाँ यहाँ मुश्किल से १०½ बजे पहुँच सकीं।

(३)

रोहटाङ्ग के आगे उतराई आरम्भ हो जाती है। अगला पड़ाव ६ मील पर कोकसर है। रोहटाङ्ग के एक ओर—मनाली की ओर—तो मक्ई पकी खड़ी है और दूसरी ओर—कोकसर की ओर—जौं पके हुए हैं। एक ही काल में ये दो अनाज मैदानों में नहीं होते। रोहटाङ्ग पर खड़े होकर देखने से जहाँ एक ओर व्यास नदी दीखती है, वहाँ दूसरी ओर चन्द्रभागा भी दिखाई देती है। यह पर्वत-शिखर प्राय: सदा ही मेघाच्छादित रहता है। हम वहाँ थोड़ी देर विश्राम करके और थोड़े से सेब खाकर राहला को वापस लौट पड़े। श्री इन्द्रसिंह आगे कोकसर देखने चले गये। लौटते समय जोर का पानी बरसने लगा। रास्ते में भारी फिसलन हो गई। गार्गी एक जगह बुरी तरह से फिसली। इससे उसके चोट लग गई। पानी से वस्त्र भीग गये। रास्ता बड़ा सँकरा था, साथ ही फिसलकर चट्टान के नीचे खड्ड में

गिर पड़ने का भी डर था। शीतल पवन शरीर को चीरती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से वापस राहला पहुँचे। परन्तु खाने के लिए यहाँ कुछ नहीं था। बहुत यत्न करने पर चार आने सेर के हिसाब से कुछ दूध मिला। उसे थोड़ा थोड़ा पिया तो कुछ शान्ति हुई। जब ज़रा पानी थमा तब मनाली के लिए चले। परन्तु कुछ ही देर बाद फिर वर्षा होने लगी। जैसे-तैसे करके रात को ७½ बजे मनाली पहुँचे। परन्तु बादलों और वृक्षों के कारण अँधेरा इतना अधिक था कि गिरने का डर रहता था। मनाली पहुँचकर होटल में भोजन किया और आराम से सोये।

कल के थके होने के कारण ९ सितम्बर को सवेरे देर से उठे। आज भी बूँदा-बाँदी हो रही थी। कल की चोट के कारण गार्गी को ज्वर हो गया, इसलिए आज यहीं विश्राम किया।

१० सितम्बर १९३७ को सवेरे ६ बजे कुल्लू को वापस लौटे। अब सारा रास्ता उतराई ही उतराई था। सायंकाल ४ बजे कुल्लू पहुँच गये।

११ सितम्बर १९३७ को कुल्लू में विश्राम किया। यद्यपि सारी रात वर्षा होती रही, तो भी यहाँ सरदी मनाली से कम थी। काँगड़ा-उपत्यका-रेलपथ योगेन्द्रनगर तक है, परन्तु नार्थ वेस्टर्न रेलवे की आउट एजंसी कुल्लू में भी है। यहाँ से फलों के पार्सल इसी एजंसी के द्वारा बाहर भेजे जाते हैं। रेलवे ने लाहौर आदि दो एक स्थानों के लिए फलों का भाड़ा विशेष रूप से कम रख छोड़ा है। दस सेर फल का भाड़ा लाहौर के लिए केवल ॥-) लगता है। सेब का भा

प्रायः इस प्रकार रहता है—बन्दरौल के विशेष सेब लगभग २२ रुपये मन, मनाली में बैनन के बग़ीचे के सेब कोई १०-१२ रुपये मन, सामान्य सेब ५-६ रुपये मन, और साधारण सेब ३-३॥) रुपये मन। मैदानों में जैसे कच्चे आमों को काट कर सुखा लेते हैं, वैसे यहाँ सेबों को भी काट कर सुखाते हैं। ये सूखे सेब चार आने से आठ आने पौण्ड तक मिलते हैं। बड़े स्वादिष्ट होते हैं। इनको तरकारी की तरह राँध कर खाते हैं। आज यहाँ दिन भर पानी बरसता रहा। बाज़ार में अबोहर के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रचारक संन्यासी स्वामी केशवानन्द जी के दर्शन हुए। वे भी भ्रमणार्थ इधर आये थे।

१२ सितम्बर १९३७ रविवार को कुल्लू में बूँदा-बाँदी होती रही, परन्तु पता लगा कि मनाली में बहुत वर्षा हुई है और सामने के पर्वत-शिखर बर्फ़ से ढँक गये हैं। हम सायंकाल कुल्लू (अखाड़ा) से चलकर भूँतर आ गये और सराय में डेरा किया। एक सराय सुल-तानसिंह कम्पनी की नदी के पार भी है और वह इस बाज़ारवाली सराय से अच्छी है। परन्तु दूर होने के कारण हमने नदी के इस पार ही रहना अच्छा समझा। रात्रि के भोजन के लिए श्रीयुत सालिग्राम दूकानदार ने अपने यहाँ न्योता दिया।

मणिकरण

१३ सितम्बर १९३७ को सवेरे उठकर मणिकरण के लिए पैदल प्रस्थान किया। वहाँ मोटर-लारी कुछ नहीं जाता। मणिकरण जाने के लिए व्यास नदी को पुल-द्वारा पार करके बायें तट पर जाना पड़ता

है। आगे का रास्ता पार्वती नदी के किनारे किनारे है। रास्ते में ऊँचे-ऊँचे ढङ्क (अत्यन्त ढालू चट्टानें) हैं। अनेक स्थानों पर सड़क केवल ६ फ़ुट चौड़ी है। उसके एक ओर बादलों से ढँके हुए सैकड़ों फ़ुट ऊँचे पर्वत हैं और दूसरी ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे गहरी खाई में पार्वती नदी बह रही है। सड़क पर खड़े होकर नीचे देखने पर सिर चकराने लगता है, दृष्टि घूमती है। पार्वती हँसती, खेलती, उछलती-कूदती, पर्वतों से टकराती, अठखेलियाँ करती हुई द्रुतगति से दौड़ी चली जाती है। रास्ते में पानी बरसने लगा। इससे मार्ग कर्दममय हो गया। पाँव फिसल फिसल पड़ता था। आज मालूम हुआ कि चप्पल पहनकर पहाड़ पर नहीं आना चाहिए। चप्पल एक तो फिसलती बहुत है, दूसरे इसमें कीच और कङ्कड़ जल्दी भर जाते हैं। १२ मील चलकर हम कोई १½ बजे 'जरी' के पड़ाव पर पहुँचे।

जरी में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की एक टूटी-सी सराय है। इसी में डेरा किया। कारण यह कि वर्षा अधिक होने लगी थी, जिससे यात्रा करना कठिन था। जरी में आटा-दाल तो मिल जाता है, परन्तु दूध मिठाई नहीं। रात को सराय की छत टपकने से बहुत कष्ट हुआ सारी रात पानी बरसता रहा।

मंगलवार १४ सितम्बर १९३७ को थोड़ा थोड़ा पानी बरस रा था। हम अपना असबाब यहीं छोड़कर मणिकरण के लिए पैदल च पड़े। मणिकरण जरी से ८ मील है। हम पानी बरसते में ही के १२ बजे वहाँ जा पहुँचे। रास्ता पार्वती के बायें तट के साथ स था। कोई एक मील इधर से ही मणिकरण के गरम जल के झर

से उठनेवाली भाफ के घने बादल दीखने लगते हैं। रास्ते में एक जगह दो बड़ी चट्टानों के बीच में से होकर पार्वती निकली है वहाँ इसका पाट इतना छोटा है कि मनुष्य छलाँग मारकर पार कर सकता है, परन्तु पानी का जोर इतना अधिक है कि देखकर डर लगता है। मणिकरण में कोई सराय या धर्मशाला नहीं। वह एक छोटा-सा गाँव है। पत्थरों का बना हुआ है। हम शंकरलाल पुरोहित के यहाँ ठहरे।

मणिकरण एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ गरम पानी के झरने हैं। इनमें से कुछ तो पार्वती नदी के ठीक तट पर हैं। पार्वती का पानी हिम के समान शीतल है। परन्तु उससे एक ही दो फ़ुट के अन्तर पर झरनों का पानी इतना गरम है कि उसमें हाथ डालें तो वह जल जाता है। लोग दाल-चावल देगची में बन्द करके इन झरनों में रख आते हैं। वे अपने आप पक जाते हैं और चाहे जितनी देर पड़े रहें, जलते बिलकुल नहीं। कारण यह कि जल का ताप-मान एक समान रहता है, बढ़ता नहीं। शङ्करलाल जी की माता ने हमारे लिए इसी गरम झरने में दाल-चावल बनाये। खाने में ये बड़े स्वादिष्ट थे।

इन प्राकृतिक झरनों के अतिरिक्त मणिकरण में लोगों ने स्नान करने के लिए बड़े बड़े कुण्ड भी बना रक्खे हैं। इनमें गरम पानी में ठंडा पानी मिलाकर उसे गुनगुना बनाया गया है। कुण्ड में प्रवेश करते समय पहले शरीर को पानी चुभता-सा जान पड़ता है। भीतर घुसने को मन नहीं होता। परन्तु एक बार डुबकी लगा लेने पर फिर

ही जी चाहता है कि पानी में ही बैठे रहें, बाहर न निकलें। इन गुनगुने पानी में शरीर को बड़ा सुख मिलता है।

मणिकरण-निवासियों ने गरम पानी की नहरें अपने मकानों में फर्श के नीचे से निकाली हैं। इससे मकान गरम रहता है और वर्षाकाल में भी गुड़-शक्कर और नमक प्रभृति पदार्थों को सील नहीं होती।

मैं पहले भी एक बार यहाँ १० आश्विन संवत् १९७९ को आया था। आज ३० भाद्रपद संवत् १९९४ है। तब श्री रुद्रमणि पुरोहित से मिला था। उस समय गरम पानी का एक झरना २-३ इंच उछलता था। परन्तु अब वह बिलकुल बन्द हो चुका है। वापस लौटने से पूर्व मेरे मन में श्री रुद्रमणि से मिलने की लालसा हुई। मैं उनसे मिलने गया और उनकी वही में उस समय का लिखा हुआ अपना विवरण देखा। तबीअत पर एक चोट-सी लगी। उस समय मेरे साथ मेरा एक मात्र पुत्र और उसकी माता थी। आज वे दोनों इस संसार में नहीं। उनकी मृत्यु से मेरा हृदय बुझ-सा गया था। घर से बाहर निकल कर सैर करने को मन ही नहीं होता था। आज १५ वर्ष के बाद बड़ी मुश्किल से तबीअत में उमंग आई तब इधर आया। रात्रि का भोजन बनवाकर हमने साथ ले लिया और कोई ३ बजे मणिकरण से जरी को लौट पड़े। सारा दिन पानी बरसता रहा। अँधेरा होने पर जरी पहुँचे। रात में वहीं विश्राम किया। सारी रात वर्षा होती रही।

१५ सितम्बर १९३७ बुधवार। सवेरे वर्षा हो रही है। कोई ९

बजे चलकर लगभग ३ बजे पानी बरसते में भूँतर पहुँचे। कई दि से निरन्तर वर्षा होती रहने से पार्वती मदमाती होकर भयंकर शब्द करती हुई दौड़ रही है। रास्ते में जो भी पेड़-पत्थर उसे मिलता है उसे उठाकर बहा ले जाती है। रास्ता कीचड़ से भर रहा है। खड्ड पर्वत पर से बड़े जोर के साथ सड़क पर गिर रहे हैं। पहाड़ी मकानों की खपरैली छतों पर सुनहरे रंग के मक्की के भुट्टे रक्खे हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। वर्षा से इनकी कुछ हानि नहीं होती। भूँतर में व्यास के बायें तट पर श्री जगतराम जी फ़ारेस्ट-रेंजर के यहाँ ठहरे। इन्होंने हमारा बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया।

रात्रि को चमकनेवाली बूटियाँ

श्री जगतराम जी ने मुझे बताया कि मणिकरण से ९ मील आगे 'पुलगा' नाम का पड़ाव है, फिर उससे ६ मील आगे क्षीरगङ्गा नाम की नदी है। इसके पानी का रङ्ग सफ़ेद है और उसमें कुछ चिकनाई भी है। उससे आगे मानतलाई के पहाड़ों की ऊँची ऊँची जोतें (पर्वत-श्रेणियाँ) हैं। रात को जगमगानेवाली बूटियाँ उन पर उत्पन्न होती हैं। भेड़-बकरी चरानेवाले 'गद्दी' ही प्रायः उनको देखते हैं। मैंने पूछा, आपने कभी देखी हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने पहाड़ पर तो जलती नहीं देखीं, परन्तु एक साधु के पास देखी हैं। मैंने पूछा, वे कैसी थीं? उन्होंने उत्तर दिया, उन्हें उसने डिबिया में बन्द कर रक्खा था और वे अँधेरे में चमकती थीं। उनके नौकर ईश्वर ने भी कहा कि मैंने भी 'जरी' में एक साधु के पास चमकनेवाली बूटी देखी थी।

वहाँ चमकनेवाली बूटियों के सम्बन्ध में बड़ी विचित्र बातें प्रसिद्ध हैं।—'काला पज्जा' नाम की एक ऐसी ही बूटी होती है। उसको दिन में ढूँढ़ना बहुत कठिन है। कूक चिड़िया नाम का पक्षी दूसरे पक्षी के घोंसले में अण्डा देकर अपना बच्चा उस पक्षी से पलवाता है। बूटी के खोजी उस बच्चे की टाँग में ताँबे का तार बाँध देते हैं। तब कूक चिड़िया वन से काला पज्जा लाकर उससे उस तार को झट काट डालती है। बच्चा तो उड़ जाता है, परन्तु काला पज्जा घोंसले में ही पड़ा रह जाता है। तब वे खोजी उसे उठा लाते हैं। काला पज्जा की पहचान यह है कि यदि वह पानी में फेंकी जाय तो वह साँप के आकार की बन जाती है।

रात को चमकनेवाली तीन बूटियाँ होती हैं। उनमें से मध्यवर्ती बूटी के सिर पर मुकुट-सा चमकता है। उस बूटी को राजा कहते हैं। उसके दायें और बायें की दोनों बूटियाँ कुछ छोटी होती हैं। रात में चमकने पर ही राजा-बूटी पहचानी जाती है। उसके मुकुट को निशाना बनाकर रात को उस पर गोली मारी जाती है। तब सवेरे उसे उखाड़कर घर ले आते हैं। लोगों में प्रसिद्ध है, कोई साधु एक कुष्ठ-रोगी फ़ारेस्ट-रेंजर को साथ लेकर इस बूटी को लेने गया। रात को राजा-बूटी के मुकुट को गोली का निशाना बनाने के बाद वे सवेरे उसे उखाड़ लाये। साधु ने राजा-बूटी की जड़ को छीलकर उबाला और रेंजर से पीने को कहा। परन्तु वह जड़ पानी में पड़ते ही कीड़ा-सा बन गई। इसलिए रेंजर ने पीने से इनकार कर दिया। तब साधु उसे पी गया। साधु का शरीर फूल गया और फटकर

उसमें से एक बारह वर्ष का बालक निकला। यह देख रेंजर ने पास पड़ा हुआ छिलका उठाकर खा लिया। इससे उसका कुष्ठ दूर हो गया। इन कहानियों में कितना सत्यांश है, सो मैं नहीं कह सकता।

१६ सितम्बर १९३७ बृहस्पतिवार। सवेरे वर्षा हो रही है। आठ दिन से निरन्तर रोज़ पानी बरसता है। आज भी दिन भर पानी बरसता रहा। व्यास में बाढ़ आ रही है। पुल से कुछ ही फ़ुट नीचे तक पानी चढ़ आया है। शहतीर और बड़े बड़े वृक्ष तिनकों की तरह तैरते चले आ रहे हैं। यदि यह नदी न हो तो इन पर्वतों पर उगनेवाले पेड़ मनुष्य के कुछ काम न आ सकें। रात को वर्षा बन्द हुई।

१७ सितम्बर १९३७ शुक्रवार को ९ दिन पीछे सूर्य भगवान् के दर्शन हुए। अब हम घर लौटने की सोचने लगे। परन्तु मालूम हुआ कि बजौरा के आगे दो मील पर सड़क टूट गई है। औट के पहले दो-तीन स्थानों पर सड़क इतनी ख़राब हो गई है कि खच्चर-घोड़ा नहीं लाँघ सकता। तब टुलची कण्ढी होकर कटौला के रास्ते जाने का विचार हुआ। परन्तु पता लगा कि वह भी टूट गया है। इसलिए बरबस यहीं रुकना पड़ा।

१८ सितम्बर १९३७ शनिवार। आकाश निर्मल है परन्तु लारी की सड़क पर जगह जगह मिट्टी-पत्थर के बड़े बड़े ढेर पहाड़ से गिरे हुए हैं, इससे रास्ता बन्द है। पता लगा कि कटौले के रास्ते दो-तीन जगह खच्चर पर से भार उतार कर जाना पड़ेगा, क्योंकि लदा हुआ खच्चर नहीं जा सकता। आज भी भूँतर में ही रुकना पड़ा। फलतः

१९ सितम्बर १९३७ रविवार को चलने का निश्चय हुआ। भूँतर से बजौरा तीन मील है और वहाँ कुल्लू-उपत्यका की सीमा है। इसलिए इस सुन्दर उपत्यका को छोड़ने के पहले मैं इसके सम्बन्ध की थोड़ी-सी और मनोरञ्जक तथा आवश्यक बातें बता देना चाहता हूँ।

कुल्लू के लोग

कुल्लू-उपत्यका में कनैत और कोली-जाति की ही अधिक संख्या है। ये ही यहाँ के आदिम निवासी समझे जाते हैं। ब्राह्मण, राजपूत और दूसरे लोग पीछे से आकर बसे हैं। सारी जन-संख्या, गत मनुष्य-गणना के अनुसार, ७८,९४७ है। अधिकतर लोग हिन्दू हैं। लाहूल और सपित्ती में बौद्ध भी बसते हैं। मुसलमान और ईसाई भी पाये जाते हैं। परन्तु इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। हाँ, मुसलमानों की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है।

रूप-रंग और आकार-प्रकार की दृष्टि से ये लोग दो प्रकार के हैं। एक तो मङ्गोल-जाति से मिलते हैं और दूसरे आर्य-जाति से। मङ्गोल लोगों की नाक मोटी और बैठी हुई-सी है। आर्य-जाति के लोग सुन्दर और सुदृढ़ हैं। मैंने एक मोची की दो स्त्रियाँ देखीं। वे दोनों सगी बहनें थीं। उनका क़द ख़ूब लम्बा और रंग-रूप बहुत सुन्दर था। लोग प्राय: भोले-भाले और ईमानदार हैं। चोरी बहुत ही कम होती है। लोगों को नृत्य और गान का बड़ा शौक़ है। वे फूलों पर मरते हैं। दरिद्रता और अविद्या बहुत है। यहाँ स्त्री भी अपने पति को तलाक़ देकर दूसरे पुरुष से विवाह कर सकती है।

लोगों का भोजन प्रायः कोदरा, आलू, कचालू, चीणा, कंग मकई, काठू, चानखू, मांस और जौ तथा चावल की मदिरा इनके मकान दो-तल्ले तथा तीन-तल्ले होते हैं, परन्तु बहुत र अँधेरे और गन्दे। उनमें प्रवेश करने पर दुर्गन्ध आती है।

कुल्लू के रीति-रवाज

किसी के यहाँ मृत्यु हो जाय तो पड़ोस के सभी लो इकट्ठे हो जाते हैं। वे अन्त्येष्टि-संस्कार के व्यय को पू करने के लिए दो आने से लेकर आठ-दस रुपये तक घरवालों वे चन्दा देते हैं। इससे मृतक के सम्बन्धियों का आर्थिक भार बहुत हलका हो जाता है। यह चन्दा कोई भिक्षा नहीं, वरन एक प्रथा वे रूप में अनिवार्य है। इसका अर्थ यह भी नहीं समझा जाता कि घर-वाले निर्धन हैं। मृत्यु हो जाने के बाद पड़ोसी और सम्बन्धी दस-पन्द्रह दिन तक मृतक के घर रात को आकर सोते हैं। कुछ लोग दिन में भी आकर पूछ-ताछ कर जाते हैं। यदि खेती-बारी का काम अधूरा पड़ा रह गया हो तो सब मिलकर उसे पूरा करा देते हैं।

सामाजिक जीवन को मधुर बनाने के लिए कुल्लूवालों में और भी अनेक रीतियाँ प्रचलित हैं, जिनसे भ्रातृभाव और प्रेम बढ़ता है। भाद्रपद, आश्विन, माघ और कई दूसरे मासों की संक्रांति को पड़ोसी और सम्बन्धी मिलकर एक-दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को सभी पड़ोसियों और सम्बन्धियों के यहाँ थोड़ा थोड़ा खाना अनिवार्य है। नवीन शस्य के अन्न का तब तक सेवन

नहीं किया जाता जब तक उस अन्न से तैयार किये खाद्य का पड़ोसियों और सम्बन्धियों को ज्योनार न खिला लिया जाय।

कुल्लू में पर्दा-प्रथा बिलकुल नहीं। प्रत्येक जाति की स्त्रियाँ नंगे मुँह इधर-उधर जाती-आती हैं। ये बड़ी परिश्रमी और बलवती होती हैं। घर का और खेती का सारा काम और प्रबन्ध इनके हाथ में होता है। स्त्री घर की स्वामिनी होती है। वह अपने पति पर शासन करती है।

कुल्लूवालों का देवी-देवताओं पर बड़ा विश्वास है। भूत, प्रेत, चुड़ैल, राक्षस और देवता से बहुत डरते हैं। घर में कोई बीमार हो जाय, गाय दूध कम दे, दूध से मक्खन कम निकले, भेड़-बकरियों को कोई रोग हो जाय, पानी न बरसे, पुत्र न उत्पन्न हो, अथवा फ़सल अच्छी न हो, तो यह सब देवताओं के कोप का परिणाम समझा जाता है। देवता के कोप को शान्त करने के लिए बकरे काटे जाते हैं।

कुल्लू का व्यापार

कुल्लू-उपत्यका में देवदारु, वन, कोइश, चील, केलो, कायल, खनोर, शीशम और तूस के पेड़ों के सघन वन हैं। इनकी लकड़ी काटकर व्यास नदी के द्वारा मैदानों में पहुँचाई जाती है। यहाँ घोड़े-टट्टू भी अच्छे होते हैं। इनका मूल्य प्रायः ५०) से लेकर २५०) तक होता है। परन्तु ये घोड़े केवल पहाड़ी प्रान्त में ही काम दे सकते हैं, मैदानों की गरमी ये नहीं सहन कर सकते। कम्मल और पट्टियाँ भी कुल्लू में बहुत बनती हैं। प्रत्येक स्त्री शीतकाल में कम से कम [illegible]

चार कम्मल तैयार कर लेती है। ये काश्मीर के कम्मलों से सस्ते बिकते हैं। इनका मूल्य चार-पाँच रुपये से लेकर पन्द्रह रुपये तक होता है। कुल्लू में अफ़ीम भी बहुत तैयार होती है। इनके अतिरिक्त कड़ू, पतीश, बनफ़सा, गुच्छियाँ, सरसों, लाल मिर्च, राई, मेथी धनियाँ, उड़द, चना, चकोर, तीतर, मधु और चाय भी यहाँ से बाहर भेजी जाती हैं। मधु-मक्षिकाओं के छत्ते लोगों ने घरों में लगा रक्खे हैं।

कुल्लू में शिकार भी बहुत है, पर उसके लिए लायसेंस लेना पड़ता है। व्यास नदी में ट्राउट नाम की एक अँगरेज़ी मछली पाली गई है। इसके शिकार के लिए लोग बम्बई तक से आते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ निम्नलिखित पशु-पक्षी पाये जाते हैं—

काला रीछ, लाल रीछ, बराघ या चीता, टङ्गरोल, स्याटो, यामू कस्तूरा, जंगली बकरी या गोरल, कर्थ, कक्कड़, मुनाल, जीर जुराना कलीशा, चमन, सुम ककड़ी, चकोर, शुङ्कल, तीतर। कुल्लू में नाले बहुत हैं। उन्हीं में अधिकतर शिकार पाया जाता है। पहली मार्च से १५ सितम्बर तक पक्षियों के शिकार की आज्ञा नहीं। रीछ का शिकार प्रत्येक ऋतु में हो सकता है। जगतसुख नाले में लाल रीछ मिलता है।

कुल्लू के मेले

कुल्लू का दशहरा बहुत प्रसिद्ध है। नवरात्र के अनन्तर शुक्ल प की दशमी को आरम्भ होकर पूर्णमासी के दिन समाप्त होता है। अन्तिम दिन ढालपुर के मैदान से उतर कर व्यास नदी के दायें त

कुल्लू में एक मेले का दृश्य

गर पाँच पशुओं की बलि दी जाती है। इसमें भैंसे का वध बड़ा करुणाजनक होता है।

पौष में देहाती लोग दीवाली मनाते हैं। ये रात्रि के समय मंदिरों में एकत्र होते हैं। फिर ढोल बजाते हुए और अश्लील गालियाँ बकते हुए गाँव का चक्कर काटते हैं। इन गालियों को जरू कहते हैं। नगर की यह दीवाली विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह नगर-गनेड़ कहलाती है।

नगर-गनेड़ में एक मनुष्य के सिर पर मेढ़े के सींग लगाये जाते हैं। फिर उसे मूसल पर बैठाकर कंधों पर उठा लिया जाता है। उसे लिये और गालियाँ गाते गाँव में फिरते हैं। इन लोगों की धारणा है कि ऐसा करने से योगिनी का प्रभाव दूर हो जाता है। अन्तिम दिन रस्सा खींचा जाता है। दो दल रस्से के सिरे को पकड़कर दौड़ते हैं जो दल निर्दिष्ट स्थान पर पहले पहुँच जाय उसे जीता हुआ समझा जाता है।

काहेनका

काहेनका का उत्सव विशेष विशेष मन्दिरों में मनाया जाता है। एक स्थान पर चार खम्भे गाड़े जाते हैं। उन पर कपड़ा ताना जाता है। इसके नीचे एक ढोलकी, एक मेढ़े का सिर और कुछ अन्न रक्खा जाता है। एक स्त्री और एक पुरुष वहाँ विशेष रूप से रहते हैं। ये नड़ कहलाते हैं। स्त्री को सीता कहते हैं। लोग गाँव के देवता और इन दोनों को लेकर नाचते हुए नियत स्थान पर पहुँचते हैं। नड़ के मुँह में रुपया दिया जाता है। यह मनुष्य मूर्च्छित

जाता है। तत्पश्चात् उसे फिर वहीं लौटा लाया जाता है। 'चेल (ओझा) मूर्च्छित नड़ पर पानी के छींटे मारता है और उसे होश लाता है। तत्पश्चात् बकरा या मेढ़ा काटा जाता है।

बानकश

यह एक बड़ी क्रूरता का उत्सव है। जब किसी घर में कोई बीमार हो जाय या किसी दूसरे प्रकार की हानि हो जाय तो ये लोग समझते हैं कि घर में किसी बुरी आत्मा का प्रभाव हो गया है और घर में बान लगा है। तब ये निकट के देवता को लाते हैं और एक बकरा लेकर बड़े ज़ोर-शोर से ढोल पीटते हैं। बकरे को मकान के प्रत्येक कोने में ले जाते हैं और उसकी पीठ के बालों को पकड़ पकड़-कर नोचते और झटके देते हैं। बेचारा अधमुआ हो जाता है। जब सब जगह घुमा चुकते हैं तब घसीट कर दूर ले जाते हैं और वहाँ उसका सिर उतार देते हैं। इसे बानकश कहते हैं।

कुल्लू की भाषा

कुल्लू की भाषा पंजाबी भाषा से अलग है। यह संस्कृत से अधिक मिलती है। कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

कुल्लू की भाषा	संस्कृत
न्याओं	न्याय
श्याल	शृगाल
हौं	अहं

कुल्लू का एक मनुष्य जिसे जौहड़ का मैला पानी पीने से गले के फूलने (गलगंड) का रोग हो रहा है। पंजाबी में इस रोग को गिल्हड़ कहते हैं। इसके गले के नीचे दो गलगंड लटक रहे हैं

कुल्लू की भाषा	संस्कृत
शेता	श्वेत
धोरनी	धरनी
उतक	उदक
लोगड़	लगुड़
हिऊँ	हिम
वृष	वृष
श्लाघा	श्लाघा
रश्मि	रश्मि
दुर्ग	दुर्ग

कुल्लू की भाषा के कुछ वाक्य भी देखिए—

हौं चौलो—मैं जाता हूँ।

आसे चौले—हम जाते हैं।

तो चौलू—तू जाता है।

तोसे चौले—तुम जाते हो।

सौ चौलू—वह जाता है।

तोसरा की नामा ?—आपका क्या नाम है।

तूसे कोए न आए ?—आप कहाँ से आये हैं ?

कोलोरी बूत कून सा ?—कुल्लू का कौन-सा रास्ता है ?

मेरी तूपक आनय—मेरी बन्दूक लाओ।

शोख लगी—प्यास लगी।

विशाँ (विश्राम) केरा—आराम करो।

परमेसरे रा ना लेश्रा—ईश्वर का नाम लो।

झूठ मौत बोल दे। प ऊई संगे संसार न प्रेम होला—झूठ मत बोलो। इससे संसार में प्रेम पैदा न होगा।

कुल्लू की कुछ अद्भुत वस्तुएँ

श्रीयुत सर्वजीत का कहना है कि—

(१) कुल्लू के कुछ नालों में ऐसे लंगूर पाये जाते हैं, जिनका क़द मनुष्य के बराबर है। इनका रंग सफ़ेद, मुँह काला और दाढ़ी सफ़ेद तथा लम्बी होती है। आमोद-प्रमोद के लिए वन के बीच समतल भूमि पर ये क़द के लिहाज़ से एक-दूसरे का हाथ पकड़ चक्राकार खड़े हो जाते हैं। बड़े लंगूर मध्य में बैठ जाते हैं और 'वों वों' का शब्द करते हैं। तब चक्कर बाँध कर खड़े लंगूर सिर को विशेष रूप से डुलाकर नृत्य करते हैं।

(२) दुर्गम पर्वतों के बीच कई ऐसे नाले हैं जिनमें अभी तक सभ्य मनुष्य का पाँव नहीं गया। वहाँ जंगली मनुष्य मिलते हैं। उनकी गुज़र वन-पशुओं पर है। उनका क़द मध्यम परन्तु शरीर बलिष्ठ होता है। सारे तन पर बाल होते हैं। एक मर्तबा कुछ शिकारी एक ऐसी जगह पहुँच गये जहाँ उनकी दृष्टि दो जङ्गली मनुष्यों पर पड़ी। उनमें से एक तो लेटा हुआ था और दूसरा उसके जूएँ निकाल रहा था। शिकारियों को देखते ही वे छलांगें मारते हुए भाग गये। शिकारियों ने पीछा किया तब एक गुफा में उन्हें बड़ी बड़ी हड्डियाँ और पंख बिखरे हुए मिले। संभवतः यह उनका निवास-स्थान था।

(३) राहला और कोठी के बीच सड़क के किनारे एक पत्थर के नीचे छिद्र है। उसमें से बड़े ज़ोर की हवा निकलती है। इस हवा के निकलने का रहस्य मालूम नहीं हुआ।

(४) रोहटाङ्ग से छः मील के अन्तर पर एक पानी का सरोवर है। उसमें यदि कोई तिनका पड़ जाय तो लाल-पीले रङ्ग की छोटी छोटी चिड़ियाँ उसे फ़ौरन उठाकर ले जाती हैं।

(५) राहले से दो मील ऊपर रोहटाङ्ग पर एक पत्थर है। उसके नीचे दो-तीन साँप और छिपकलियाँ हैं। लोग उनका दर्शन करते और दूध-पेड़े चढ़ाते हैं। ये साँप काटते नहीं। कभी कभी छिपकली साँप पर सवार हो जाती है। यह दर्शन बड़ा शुभ समझा जाता है।

(६) मनाली और कलाथ के बीच कलौगट नाम का एक वन है। इसके टुकड़ा नं० ३ की बुरजी नं० ४ के निकट एक चट्टान पर केलो का एक वृक्ष है। इसे जुमलो (जमदाग्नि ?) की केलो कहते हैं। इसका घेरा २० फ़ुट, छतर ११० फ़ुट और ऊँचाई ७० फ़ुट है। इसकी आयु एक सहस्र वर्ष कूती जाती है।

राज्य-प्रबन्ध

कुल्लू में कतिपय ग्रामों को मिलाकर एक फाटी बनाई गई है। इसमें एक नम्बरदार और एक चौकीदार रहता है। ये ग्रामवासियों के कुशल-क्षेम की सूचना सरकार में देते हैं। इनके अतिरिक्त भूमि-सम्बन्धी झगड़े मिटाने के लिए एक एक पटवारी नियुक्त है। कतिपय फाटियों को मिलाकर एक कोठी बनाई गई है। इसमें एक "नेगी"

नियत रहता है। फाटी के नम्बरदार और चौकीदार इसके अधी होते हैं। यह भूमि का लगान इकट्ठा करके राजकीय कोश में दाखि करता है। कतिपय कोठियाँ मिलकर 'वजारत' बनती है। वजारतें को मिलाकर तहसील बनती है। इसमें तहसीलदार, नायब तहसील दार आदि होते हैं इन सबका उच्च पदाधिकारी असिस्टेण्ट कमिश्नर कुल्लू में रहता है।

वापसी

१९ सितम्बर को सवेरे दुलची कण्ढी के रास्ते मंडी के लिए चल पड़े। परन्तु बजौरे से आगे तीन मील जाकर फिर वापस आना पड़ा। कारण यह कि आगे रास्ता ल्हासों के गिरने से रुका हुआ था। तब बजौरा से औट को चले। यहाँ भी तीन जगह रास्ता बहुत खराब था। मजदूरों की सहायता से खच्चर को मुश्किल से लँघाया। सायंकाल औट पहुँचे, और रात्रि को देवी शन्नो के चौबारे में रहे। सड़क टूट जाने से औट में खाद्य पदार्थों का अभाव-सा हो रहा था। भूँईतर से डी० ए० वी० हाई स्कूल लाहौर के मास्टर रामप्रताप भी सपत्नीक हमारे साथ आये थे। उनको यहाँ बच्चे के लिए दूध मिलना कठिन हो गया। ९ दिन निरन्तर वर्षा होते रहने के कारण वे रोहटाङ्ग और मणिकरण भी नहीं जा सके थे।

२० सितम्बर १९३७ सोमवार को हम औट से पण्डोह को चले। परन्तु रास्ते में $\frac{१९}{२}$ और $\frac{१९}{१}$ मील के बीच एक जगह सड़क बहुत

री तरह से टूट गई थी। ५५ फ़ुट गहरा डङ्गा (पत्थरों को चुनकर नाया हुआ पुल का खम्भा) गिर गया था। नीचे विपाशा नदी वह ही थी और ऊपर पर्वत की ऊँची चट्टान खड़ी थी। इससे कोई ० फ़ुट चौड़ी और ५५ फ़ुट गहरी खाई हो गई थी। इसको पार रना, विशेषतः खच्चर-टट्टू के लिए, बहुत कठिन था। इसलिए वहाँ आकर रुक जाना पड़ा। खच्चर को तो हमने इधर ही ठहरा दिया, रन्तु असबाव को उठाकर खाई के दूसरी ओर ले गये। पण्डोह हाँ से ५ मील था। इसलिए लड़कों और लड़कियों को तो हमने दैल रवाना कर दिया ताकि पण्डोह में जाकर विश्राम करें, परन्तु मैं और श्री इन्द्रसिंह साँझ तक असबाव के पास बैठे रहे। हमें आशा थी कि कुली मिल जायँगे तो उन्हीं पर असबाव पण्डोह पहुँचा देंगे। परन्तु कुली वहाँ कहाँ? यहाँ मनाली के श्रीयुत हर्बर्ट बैनन से भेंट हुई। उनके अतिरिक्त सेंट स्टीवन्स कालेज, दिल्ली के एक अँगरेज़ प्रोफ़ेसर, काँगड़े के पादरी साहब और दो-एक अन्य सज्जनों की एक मंडली भी मिली। ये लोग लद्दाख से भी परे से बीस हज़ार फ़ुट ऊँची चोटियाँ पार करके आये थे। सायंकाल कोई ६ बजे पण्डोह से लारी आई। उसमें असबाव लेकर हम रात को पण्डोह पहुँचे। ५ मील का दो मनुष्यों का किराया ।=)॥ लगा। पण्डोह में फिर भूपचन्द जी के ही अतिथि हुए। उन्होंने सत्कार करने में पराकाष्ठा दिखला दी।

सड़क टूट जाने के कारण कई दिन निकम्मा बैठना पड़ा था। थकान सब उतर गई थी।

२१ सितम्बर १९३७ मङ्गलवार को पण्डोह ही में ठहरना पड़ा, क्योंकि खच्चरवाला नहीं आ सका।

२२ सितम्बर १९३७ बुधवार को निका खच्चर लेकर ९ बजे पण्डोह आ पहुँचा। आज लारी भी चलने लगी। हम ९½ बजे पण्डोह से चलकर कोई १½ बजे मण्डी पहुँचे। श्री भूपचन्द जी की माता ने साथ लेने के लिए हमें भोजन बना दिया था, वह मण्डी पहुँच कर खाया।

होशियारपुर का दूसरा मार्ग

आते समय हम योगेन्द्रनगर से मण्डी आये थे, परन्तु लौटते समय हमने होशियारपुर का दूसरा ही मार्ग पकड़ा। मण्डी से ६ मील के अन्तर पर नागचलाह नाम का एक स्थान है। वहाँ पानी का एक बहुत बड़ा सरोवर (चलाह) है। पन्द्रह वर्ष पहले जब मैं यहाँ आया था तब चूड़ामणि और कमला नाम के दो भाई-बहन बालक मिले थे। उनसे आटा-दाल और लकड़ी लेकर हमने भोजन बनाया था। उनसे मिलने की मुझे बड़ी लालसा थी। उन दिनों उनकी दूकान एक टूटी-फूटी झोपड़ी थी। परन्तु अब देखा तो वहाँ बड़ी सुन्दर दूकानें बनी हुई थीं। पूछने पर मालूम हुआ, दोनों बालक अब जवान हो चुके हैं। कमला अपने ससुराल में है, चूड़ामणि कई बच्चों का बाप है। इस समय उसकी भार्या घर पर थी, वह आप कहीं बाहर गया था। नागचलाह के २ मील आगे भङ्गरोट नाम का स्थान है। वहाँ मेरे एक मित्र श्री लक्ष्मणदास दूकान करते हैं। उनसे

मिले बरसों हो गये थे। इसलिए आज रात को उन्हीं के यहाँ विश्राम किया। उन्होंने और उनकी धर्मपत्नी ने हमारा ख़ूब आतिथ्य-सत्कार किया मुन्नी (सुशीला) को रास्ते में उलटी, हिचकी और दस्त की तकलीफ़ हो गई थी। डर था कि वह यहाँ तक पैदल पहुँच भी सकेगी या नहीं। परन्तु ईश-कृपा से उसकी तबीअत सुधर गई और हम निश्चिन्त होकर सोये।

२३ सितम्बर १९३७ बृहस्पतिवार को सवेरे भङ्गरौट्टू से चले। भङ्गरौट्टू का सारा इलाक़ा 'बल्ह' कहलाता है। यह पर्वत पर एक बहुत बड़ा समतल क्षेत्र है। यहाँ मैदानों की ही तरह फ़सलें होती हैं। चलते समय मालूम नहीं होता कि हम पहाड़ में घूम रहे हैं या मैदानों में ही फिर रहे हैं। भङ्गरौट्टू से १½ मील पर रत्ती खड्ड मिला। यहाँ से एक रास्ता सुकेत से होकर शिमला को गया है। हमारा रास्ता दूसरा था। यहाँ से चढ़ाई शुरू हो जाती है। समतल क्षेत्र समाप्त हो जाता है। तीन मील चलने पर गलमादेवी नामक स्थान मिला। गलमादेवी से आगे ६ मील पर कलखर नाम की जगह है। यहाँ तक ९ मील बराबर चढ़ाई ही चढ़ाई है। रास्ते में दूकानें तो कई जगह मिलीं, परन्तु सब उजड़ी हुई थीं। पूछने पर मालूम हुआ कि जब से मोटरलारी चलने लगी है तब से ये दूकानें बर्बाद हो गई हैं। रास्ते में कोई मुसाफ़िर उतरता ही नहीं। इसलिए दूकानदारों की कोई बिक्री नहीं होती। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मोटरलारी देश की बड़ी भारी हानि कर रही है। जब लोग पैदल या घोड़े पर यात्रा करते थे तब दूकानदारों को और घास-लकड़ी बेचनेवालों को आय

हो जाती थी। बहुत-से देश-बंधुओं का पेट पलता था। अब मोटर-लारी से सारा रुपया विदेश को चला जाता है। लोग किस्तों पर लारी ख़रीदते हैं। जितने काल में उनकी किस्तें पूरी होती हैं उतने काल में लारी घिसकर लोहे की ठठरी रह जाती है। मैंने पूछकर देखा है, लारीवालों को कुछ भी लाभ नहीं। पंजाब के कई सिक्खों ने अपनी ज़मीनें बेचकर कलकत्ते में लारियाँ बनाई हैं। परन्तु कुछ भी लाभ न होने के कारण कंगाल हो गये हैं और अब पंजाब भी वापस नहीं आ सकते। राष्ट्र का प्रचुर धन इन मोटरों के कारण व्यर्थ ही विदेश को जा रहा है और देश में दरिद्रता बढ़ रही है। मोटरलारियों ने लोगों को आलसी बना दिया है। जो पहाड़ी मनुष्य पहले तीस-पैंतीस मील की यात्रा को एक साधारण-सी बात समझते थे, अब सात-आठ मील जाने के लिए भी मोटर की प्रतीक्षा में चार-चार घंटे बैठे रहते हैं। ये लोग पाँच आने प्रतिदिन से अधिक नहीं कमा सकते और चाहें तो एक दिन में पैदल २० मील आसानी से चल सकते हैं, परन्तु अब ये पैदल न चलकर २० मील लारी में जाते हैं और इसके लिए अपनी तीन दिन की कमाई पन्द्रह आने भाड़े के रूप में दे देते हैं। जहाँ समय बहुमूल्य हो, वहाँ मोटर में यात्रा करके समय बचाना बुद्धिमत्ता है, परन्तु जहाँ समय का मूल्य कुछ भी नहीं, वहाँ मोटर की सवारी में धन का व्यय करना मूर्खता नहीं और क्या है?

कलखर में एक दूकान मिली। दूकानदार का नाम था मुकुन्द-लाल। यहाँ दूध और फल भी थे। कलखर से रूयालसर को

पगडंडी जाती है। रुआलसर एक तीर्थ-स्थान है। यहाँ एक प्राकृतिक सरोवर में घास-फूस के टीले तैरते हैं। एक बौद्ध-मन्दिर भी है। यहाँ से इसका अन्तर तीन मील है। मैं १५ वर्ष पहले इसे देख चुका हूँ। श्री इन्द्रसिंह, नरेन्द्र और रणवीर ये तीनों इसे देखने चले गये। लड़कियाँ और खच्चरवाला अभी पीछे ही थे। मैं दूकान में उनकी प्रतीक्षा करने को बैठ गया। जब वे आ गईं तब चाय बनाकर पी। नौ मील की चढ़ाई चढ़ने से लड़कियाँ थक गई थीं। इसलिए कुछ देर यहाँ विश्राम किया। इतने में श्री इन्द्रसिंह आदि भी रुआलसर देखकर आ गये। तब हम सब आगे चले। कोई आधा मील तक और चढ़ाई थी। उसके बाद उतराई आरम्भ हो गई। सिकन्दरे की धार (पर्वत-श्रेणी) और सीर खड्ड को लाँघकर सायंकाल 'जाहू की हट्टी' नामक स्थान में जा पहुँचे। यह जगह गलमादेवी से १६ मील है। इससे एक मील पहले सीर खड्ड के पार भाम्बला नामक स्थान था। वह मण्डी-राज्य की सीमा है। जाहू की हाट काङ्गड़ा जिला के अन्तर्गत ब्रिटिश इलाक़ा है।

जाहू में श्री पूर्णचन्द नाम के एक सज्जन ने हमें अपने मकान का सुन्दर बराण्डा रहने के लिए दिया। यहाँ एक सराय तो थी परन्तु एक तो वह गन्दी थी, दूसरे खाद्य-पदार्थों की दूकान से दूर थी, इसलिए हमने उसमें ठहरना उचित न समझा। जाहू में शिवराम नाम का एक व्यक्ति यू० पी० की एक स्त्री लाया हुआ है। इस स्त्री को लोग पूर्बन (अर्थात् पूर्व की) कहकर पुकारते हैं। ये दोनों पति पत्नी होटल का काम करते हैं। कोई मुसाफिर आ जाय तो उसे रोटी

बना देते हैं। इनका कोई नियमपूर्वक भोजनालय नहीं। हमने इन्हीं से भोजन बनवाकर खाया।

यहाँ एक ऐसा दृश्य देखने को मिला जिससे मेरे हृदय ! चोट-सी लगी। मैं भोजन करके ढाबे से नीचे सड़क पर आया। क्या देखा कि एक व्यक्ति सड़क पर ढाबे की दीवार से कुछ अन्तर प सिकुड़ा हुआ बैठा है। मैं समझा, कोई चोर अँधेरे में छिपा है। मैं उसे डाँटकर पूछा, तुम कौन हो और यहाँ इस प्रकार दबक कर क्यों बैठे हो? उसने कहा, मैं मुसाफ़िर हूँ और ढाबे से भोजन खरीदने आया हूँ। मैंने कहा, फिर इस प्रकार मिट्टी में सड़क पर क्यों बैठे हो? उठकर ऊपर ढाबे में जाओ और भोजन ले लो। वह बोला, मैं 'बाहर का' हूँ। पहले तो मैं इसका कुछ अर्थ न समझा। फिर पता लगा कि वह अवर्ण है। मैंने ढाबेवाले से कहा, इस मनुष्य को तुम ऊपर क्यों नहीं आने देते। वह बोला, यह नीच जाति है। मैंने कहा, तुम अपने कपड़ों और इसके कपड़ों की ओर तो देखो। तुम्हारे कपड़े कितने गन्दे हैं और इसके कितने साफ़ हैं। मैला खानेवाला कुत्ता तुम्हारे चौके में फिर रहा है और इस मनुष्य-प्राणी को तुम अपने निकट तक नहीं आने देते! परन्तु मेरी अपील का उस पर कुछ असर न हुआ। वह इतना ही बोला कि आप जो कहते हैं वह भी ठीक है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसा ही रवाज है। आपके लाहौर-अमृतसर की दूसरी बात है। रात्रि को मैंने तथा श्री इन्द्रसिंह ने यहाँ के रईस श्री पूर्णचन्द दूकानदार से जात-पाँत की बुराइयों के सम्बन्ध में खूब बात-चीत की और उन्हें

अपना साहित्य दिया। उन्होंने हमारे विचारों का अभिनन्दन किया।

२४ सितम्बर १९३७ शुक्रवार को सवेरे ही चल पड़े। एक मील तक चढ़ाई थी। पर्वत चील के पेड़ों से भरे हुए थे। यहाँ से १८ मील पर शुक्र खड्ड की दूकानें हैं। खड्ड कोई एक मील चौड़ा है। इसमें पत्थर ही पत्थर भरे हैं। शुक्र खड्ड से कोई ३ मील पहले बहोटा एक अच्छी जगह है। यहाँ होटल है, हलवाई की दूकान है, दूध मिल जाता है। यहाँ से शिमला को सड़क जाती है। शिमला यहाँ से ७५ मील है। हम शुक्र खड्ड को पार कर उसके दूसरे किनारे पर ठहरे। मोची से जूतों की मरम्मत कराई। यहाँ दूध मिल जाता है। रात को बहुत जाड़ा लगा।

२५ सितम्बर १९३७ शनिवार। कल धूप में चलने से बड़ी थकावट हो गई थी। इसलिए अब रात रात में ही सफ़र तय करने का निश्चय किया। सवेरे पौने दो बजे चल पड़े। पहले कुछ दूर तक चढ़ाई थी, क्योंकि रात हम खड्ड के किनारे ठहरे थे। इसके बाद उतराई शुरू हो गई। पर्वत हरे-भरे थे। चील और पारिजात पुष्प के पेड़ जगह जगह उगे हुए थे। पहले बमलू का खड्ड मिला, फिर ७ मील पर बड़सर का थाना। इसके बाद ५ मील चलने पर लठियानी आई। यहाँ दूध मिलता था और एक छोटा-सा ढाबा भी था। इसके आगे लूण खरी खड्ड और उसके [illegible]
मील के अन्तर पर, देई का पड़ाव मिल
असबाब का टट्टू रास्ते में गिर पड़ा।

कोई १० बजे बेई पहुँच सके। यहाँ दूध और आटा-दाल सब मिलता है। यहाँ पर्वत पर चील के पेड़ इतनी अधिक संख्या में हैं कि यहाँ यदि क्षयपीड़ितों के लिए आतुरालय बनाया जाय तो बहुत अच्छा हो। अनेक स्थानों पर सरकार ने राल के भाण्डार बना रक्खे हैं। यहाँ चील के पेड़ों में से टपका हुआ रस टीन के पीपों में बन्द करके रक्खा रहता है।

इधर छूत-छात और जात-पाँत का बड़ा ज़ोर है। एक जगह हमने दूकानदार से लेकर दूध पिया। उसने हमारा जूठा गिलास माँजने से इनकार कर दिया। अमेरिका आदि देशों में ईमानदारी का कोई भी काम बुरा नहीं समझा जाता। वहाँ लोग श्रम की प्रतिष्ठा को समझते हैं। वहाँ प्रोफ़ेसर तक फ़ालतू समय में टट्टी साफ़ करने का काम करके पैसे कमा लेते हैं और इसे समाज कोई ऐब नहीं समझता। परन्तु भारत में जात-पाँत ने श्रम के गौरव को गिरा दिया है। यहाँ झाड़ू देना, बर्तन माँजना, टट्टी साफ़ करना, पानी भरना, बर्तन बनाना, क्षौर करना, तेल निकालना आदि कामों को नीच समझा जाता है। इनको करनेवाले मनुष्यों को शूद्र कहकर दुतकारा जाता है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जब तक जात-पाँत और छूत-छात का निवारण करनेवाले क़ानून नहीं बनेंगे तब तक ये सामाजिक कुरीतियाँ दूर न होंगी। सती की प्रथा, पुत्रियों की हत्या की प्रथा और विधवा-विवाह का निषेध आदि कुरीतियाँ कभी दूर न होतीं यदि ये क़ानून-द्वारा बन्द न की जातीं। यह क़ानून होना चाहिए कि जो मनुष्य दूध बेचे उसे अपने ग्राहकों के जूठे बर्तन भी साफ़ करने पड़ेंगे।

श्री इन्द्रसिंह उस दूकानदार के साथ लड़ने को तैयार थे और जूठे बर्तन वैसे के वैसे छोड़कर चलने लगे थे, परन्तु दूकानदार को अविद्यान्धकार में ठोकरें खाता समझ मैंने सूर्यबली से बर्तन साफ़ करा दिये।

२६ सितम्बर १९३७ रविवार को धूप से बचने के लिए सवेरे १ बजे बई से चले। ६ मील पर उर्स या निगाहा नामक स्थान मिला। उसके आगे ५ मील चलकर हम ऊना में आ पहुँचे। यहीं हमें सूर्य निकला। रास्ते में पत्थरों से भरे तीन-चार सूखे खड्ड मिले। धूप होती तो इस शुष्क पथरीले मार्ग को तय करना अति कठिन हो जाता। रात की ठण्डक में आसानी से ११ मील निकल आये। ऊना में हाथ-मुँह धोकर थोड़ा थोड़ा दूध पिया और चल पड़े। ऊना से पण्डोगा ७ मील पर था। हम कोई ९½ बजे वहाँ पहुँच गये। ऊना और पण्डोगा के बीच २ मील चौड़े पाट की सुआँ नदी मिलती है। इसमें हमने स्नान किया। पण्डोगा में रोटी बनवाई। फिर थोड़ा विश्राम करने के बाद आगे चल पड़े और १४ मील चलकर रात को ८ बजे पुरानी बसी पहुँच गये। इस प्रकार आज ३२ मील यात्रा की। श्री इन्द्रसिंह को २७ सितम्बर को दफ्तर में पहुँचना था, इसलिए वे तड़के उठकर होशियारपुर से लाहौर के लिए रेल पर सवार हो गये और हम कुछ दिन गाँव में विश्राम करके ४ आक्टोबर को लाहौर आ गये। इस प्रकार भगवत्कृपा से हमारी यह पर्वत-यात्रा सकुशल समाप्त हुई।

मैंने अपना यह यात्रा-वृत्तान्त इस दृष्टि से लिखा है कि मेरी स्थिति के दूसरे यात्री को भी अपनी कुल्लू-यात्रा में सहायता मिल सके।

आस्ट्रेलिया-यात्रा

(१)

२० दिसम्बर १९३७ को पी० एण्ड० ओ० कम्पनी के स्ट्रैथनेवर जहाज़ से मैंने आस्ट्रेलिया के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान करने के समय तक उस विशाल महाद्वीप के सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानती थी। मेरा ऐसा विचार था कि वहाँ देखने के योग्य कुछ नहीं है और वहाँ के लोग भी पश्चिमीय सभ्य जातियों में पहली श्रेणी के नहीं हैं। इसलिए मेरे मन में आस्ट्रेलिया के लिए कुछ भी उत्साह नहीं था। परन्तु वहाँ जाकर मैंने जो कुछ देखा और यात्रा में जो रस लिया, पाठकों को मैं अपने साथ उसका भागी बनाना चाहती हूँ और आशा करती हूँ कि इस लेख में मैं जो कुछ लिखूँगी वह उन्हें रोचक मालूम होगा।

अब तक मैं जितने जहाज़ों पर यात्रा कर चुकी थी, स्ट्रैथनेवर जहाज़ उन सबसे बड़ा था। बम्बई के बैलेड पायर पर रात के ग्यारह बजे जब हम जहाज़ पर सवार होने को पहुँचे तब एक बड़े गढ़ के समान जहाज़ की ऊँचाई को देखकर मैं चकित रह गई। २२ हज़ार से अधिक टन के उस विशाल जहाज़ में लगभग दो हज़ार यात्रियों के रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध था। परन्तु आस्ट्रेलिया जानेवाले यात्री अधिक नहीं होते। स्ट्रैथनेवर जहाज़ पर हमारी श्रेणी में ढाई-

तीन सौ से अधिक यात्री नहीं थे। लंका द्वीप पहुँचने तक उस श्रेणी में केवल पाँच ही भारतवासी थे—मैं, मेरे पति, माननीय पण्डित प्रकाशनारायण सप्रू, उनकी स्त्री और आगरे के रहनेवाले डाक्टर बनारसीदास। शेष सब गोरे ही थे। काले-गोरों में अभी तक सच्चा मेल तो हो नहीं पाता, इसलिए अधिकतर हम पाँच ही परस्पर मिलते और बातचीत करते थे। कुछ गोरों से भी परिचय हो गया था, परन्तु उतना नहीं कि उनमें कुछ मित्र-भाव आ सके।

मुझे समुद्र से प्रेम नहीं है। जहाज के तनिक भी हिलने से मेरा मन मचलाने लगता है। इसलिए मुझे भय था कि १७-१८ दिन की वह लम्बी यात्रा कौन जाने किस प्रकार काटनी पड़े। मैं ऐसा समझती थी कि शायद सब दिन ही मन मिचलने के कष्ट से कैबिन में अथवा डेक पर ही पड़े पड़े बिताने पड़ें। परन्तु अनुभव इसके विरुद्ध हुआ। सिवा तीन दिन के समुद्र बराबर शान्त ही रहा। तीसरे दिन दूसरी जनवरी को सवेरे हम लंकाद्वीप की राजधानी कोलम्बो पहुँचे। इन तीनों दिन हमारा जहाज अरब-समुद्र में भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे के बराबर बराबर चलता रहा। भारत के किनारे से हम कभी दूर न हुए। बम्बई से चलकर कर्नाटक, मलाबार, कोचिन, ट्रावनकोर की धरती के भिन्न भिन्न दृश्य हमारे सामने से आकर निकल गये। कहीं सूखे नंगे पर्वत, कहीं हरे हरे वृक्षों से लदे हुए टीले, लाल लाल खपरैल के रहने के मकान सब इस बात के साक्षी थे कि उनके पीछे स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध-बालक जीवन के संग्राम में जुटे अपनी अपनी धुन में रत हैं; भूख, बीमारी, दरिद्रता, अन्याय, समाज-

संगठन से पीड़ित जैसे-तैसे जीवन-यात्रा पूरी कर रहे हैं। उनके और हमारे बीच में बीस-बाईस मील चौड़ा गहरा नीला समुद्र था। देखने में शान्त और गम्भीर, परन्तु उसमें भी करोड़ों जीव भिन्न भिन्न योनियों में अपना भोगमान भोग रहे थे। कौन कह सकता है कि कितने प्रकार के जीव उसमें होंगे। मैंने भिन्न भिन्न स्थानों में मछली-गृह देखे हैं। उनमें जलचरों के सहस्रों प्रकार देखकर बुद्धि चकित रह जाती है। और उनकी सुन्दरता तो अपार है। जलचरों के भाँति भाँति के रूप, भाँति भाँति के वर्ण, भाँति भाँति के आकार और जीवन-निर्वाह का भाँति भाँति का ढङ्ग इन सबका पूरा एक शास्त्र बन गया है। फिर भी कौन कह सकता है कि पृथ्वी पर आच्छादित इस अनन्त समुद्र के पेट में कौन कौन रहता है, कैसे रहता है, क्या करता है? वह तो एक दूसरा ही लोक है, जिसका ज्ञान हमको केवल नाम-मात्र है।

भारत का किनारा छूट जाने पर हम खुले समुद्र में आ निकले। अब भारतीय समुद्र में पहुँच जाने पर एकदम प्रचण्ड वायु बहने लगी और सागर-तल पर भी लहरें तीव्र हो उठीं। परन्तु लंका-द्वीप भारत से है ही कितनी दूर! थोड़ी ही देर में उसका किनारा भी दिखाई देने लगा। समुद्र में फिर एक बार जान-सी पड़ गई। मछलीमारों की कोड़ियों नावें इधर-उधर आती-जाती दिखाई देने लगीं, सूर्य की तीव्र किरणों में नावों के चाँदी के समान श्वेत बादबान चमकते हुए ऐसे सुन्दर दिखाई देते थे, जैसे हंस धीरे धीरे अपनी राजसी चाल से तैरता जा रहा हो। ये चतुर मछली-मार हाथ हाथ
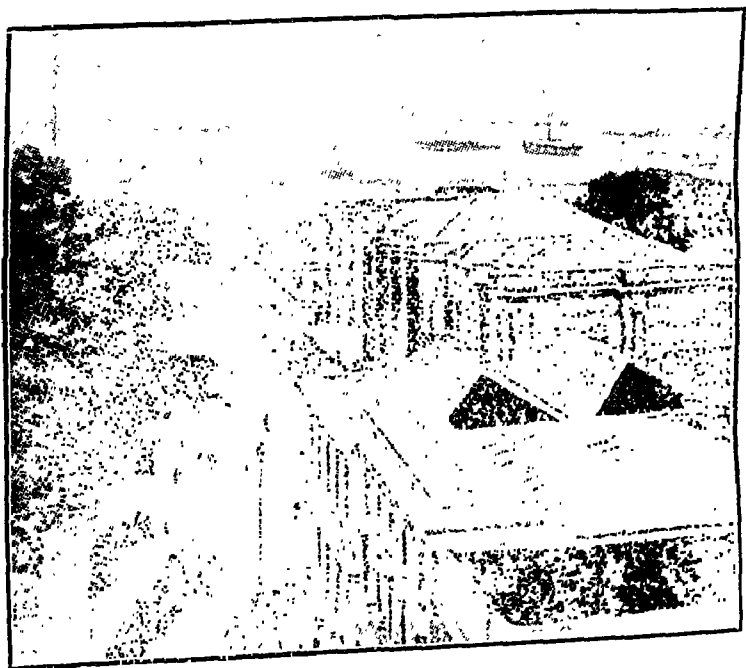
कोलम्बो बन्दर का दृश्य

नूल के हाथी, सियाही के काँटों के बने हुए बक्स और डिब्बे-डिबियें और अन्य कई प्रकार की उपयोग की वस्तुओं से नावें भर भरकर बेचनेवाले जहाज़ के किनारे तक आ पहुँचते हैं और चिल्ला चिल्लाकर समुद्र-तल को मछली-बाज़ार बना देते हैं। यहाँ इनकी बिक्री भी ख़ासी हो जाती है, क्योंकि यात्री सस्ता होने के कारण इनसे काफ़ी माल ख़रीद लेते हैं। दिन चढ़ने पर ८-१० बजे तक जहाज़ पर से उतर कर हम कोलम्बो नगर में पहुँचे, रावण की स्वर्णमयी लंका में पहली बार पाँव रक्खा। बड़े बड़े महल, आलीशान दूकानें, ऊँचे ऊँचे दफ़्तर और विशाल होटलों से नगर की शोभा अच्छी बनी हुई थी। अधिकतर दूकानें विदेशी माल से पटी पड़ी थीं। देशी बाज़ार की ओर भी हम गये थे, परन्तु वहाँ भी अधिकतर विदेशी माल ही दिखाई देता था। सड़कें और गलियाँ साफ़-सुथरी और अच्छी थीं। लोग भी सफ़ेद और साफ़-सुथरे वस्त्र पहने थे।

लंका में रबर की उपज अच्छी होती है। लगभग पचास वर्ष हुए, जब पहली बार इस देश में रबर का पौधा लगाया गया था। इन पचास वर्षों में रबर की खेती करनेवालों को बहुत आर्थिक लाभ हुआ। रबर की माँग संसार में बढ़ती ही जाती है, इसलिए रबर पैदा करनेवालों को अच्छी आय है। इधर कुछ दिनों से रबर के दाम घट गये हैं, फिर भी लंका के रबर के बाग़ों के मालिक बहुत धनी हैं और बड़े ठाट-बाट से रहते हैं। एक ऐसे ही ईसाई प्लैंटर से हमारा परिचय था। वे हमको अपने घर ले गये। कोलम्बो से २५ मील के अन्तर पर एक सुन्दर पहाड़ी पर उनका रबर का बाग़ था और वहाँ

कोलम्बो नगर की एक प्रसिद्ध सड़क

जिनके कारण द्वीप की उपज बहुत अच्छी है। फिर भी लोग दरिद्र हैं और काफ़ी खाने को नहीं मिलता।

तीसरी जनवरी को हमारा जहाज़ यहाँ से आगे रवाना हुआ। समुद्र बराबर शान्त ही रहा। जहाज़ बिलकुल नहीं डोलता था। ऐसा जान पड़ता था, मानो सब प्रकार की सामग्री से भरा हुआ एक बड़ा प्रासाद फिसलता हुआ आगे बढ़ा जाता हो। मौसम भी बहुत सुहावना था—न जाड़ा, न गर्मी। हम बराबर भूमध्यरेखा की ओर बढ़े चले जा रहे थे, इसलिए दिन दिन गर्मी बढ़ती जाती थी, परन्तु ऐसी नहीं जो बुरी लगे। ज्यों ज्यों आगे चलते जाते थे, समुद्र अधिकाधिक शान्त होता जाता था, यहाँ तक कि भूमध्यरेखा पर पहुँचने पर समुद्र एक बिल्लौरी चादर के समान दिखाई देने लगा। उसको देखकर यह जानना कठिन था कि वह पानी है या कोई चिकनी ठोस वस्तु। भूमध्यरेखा के निकटवर्ती उष्ण जल-वायुवाले समुद्रों में मैं पहले कभी नहीं गई थी। परन्तु सुना था कि पृथ्वी के इस भाग के समुद्रों में एक अद्भुत रसीला और सुहावनापन होता है। इस बार इधर की यात्रा करके इसका अनुभव मैंने स्वयं कर लिया। यहाँ के वायु-मंडल में ही कुछ ऐसी कौतुकता और शान्ति थी कि साँस के साथ ही मानो मनुष्य उसे भीतर भर लेता था। दिन भर यात्री लोग ऊपर के डेक पर जाकर भाँति भाँति के खेल खेलते थे। तैरने के लिए दो दो तालाब थे। स्त्री-पुरुष तालाबों में स्नान कर धूप में लेट जाते और सूर्य भगवान् की किरणों से ख़ूब तपा करते। रात को नाच होता, सिनेमा होता, ब्रिज आदि और खेल होते। इसी भाँति हँसते-खेलते,

ाते-पीते लगभग ७ हज़ार मील का रास्ता कट गया और ११ जनवरी ो आस्ट्रेलिया का पहला बन्दरगाह दिखाई दिया।

आस्ट्रेलिया भूमध्यरेखा के दक्षिण की ओर है। पृथ्वी के उत्तरी ोलार्द्ध में हम और दक्षिणी गोलार्द्ध में आस्ट्रेलिया है। इसलिए हमारे ाड़े के दिनों में वहाँ गर्मी और हमारे गर्मी के दिनों में वहाँ ाड़ा होता है। दिसम्बर, जनवरी, फ़रवरी में वहाँ गर्मी का मौसम ्ोता है। जब हम वहाँ पहुँचे, उनके कड़ी गर्मियों के दिन थे। ्मने ऐसा सुना भी था कि वहाँ बहुत ताप होता है। परन्तु जहाँ जहाँ हम गये, हमें तो किसी स्थान पर भी कड़ी गर्मी नहीं मेली। ८०-९० डिग्री से अधिक गर्मी कहीं भी नहीं थी। वैसे तो आस्ट्रेलिया इतना विशाल देश है कि उसके किसी किसी भाग में, विशेष कर केन्द्रीय भाग में, इतनी कड़ी गर्मी होती है कि वहाँ कोई रह भी नहीं सकता। परन्तु समुद्र के किनारे किनारे के नगरों में जहाँ हम गये थे, इतनी गर्मी नहीं होती। ऐडेलेंड में, जो दक्षिण आस्ट्रेलिया का एक बड़ा नगर है, कभी कभी ११६ डिग्री तक गर्मी हो जाती है। परन्तु बहुत कम।

आस्ट्रेलिया का पश्चिमीय भाग, जो हमें सबसे पहले दिखाई दिया, बिलकुल सूखा, बंजर, सफ़ेद चूने और स्लेटी पत्थरों से भरा हुआ है। पेड़-पत्ते, हरियाली कहीं कठिनाई से ही दिखाई देती है। फ़्रीमेंटल एक छोटा-सा बन्दरगाह है, परन्तु उसके बीस मील के अन्तर पर पर्थ नाम का एक बड़ा नगर है, जो पश्चिमीय आस्ट्रेलिया की राजधानी है। हमारा जहाज़ १० घण्टे फ़्रीमेंटल के बन्दरगाह पर

ठहरा। इन १० घण्टों में हम ७०-८० मील मोटर पर घूमे। इस ७०-८० मील की यात्रा में कई गाँव और छोटे छोटे क़स्बे देखे। फ्रीमेंटल से पर्थ तक तो २० मील तक बिलकुल ऐसा लगता था, मानों एक सिरे से दूसरे तक पूरा शहर ही बसा है। पर्थ की जन-संख्या १,८४,००० है। इतने थोड़े मनुष्यों के लिए रहने के मकान कितनी बड़ी संख्या में हैं, यह देखकर मैं चकित रह गई। विचार करने पर मुझे स्मरण हुआ कि मैं भारतवर्ष में नहीं हूँ, जहाँ सहस्रों मनुष्य आकाश के नीचे रह कर जीवन बिता देते हैं अथवा एक एक कमरे में कई कई मनुष्य रहते हैं, परन्तु मैं ऐसे देश में हूँ, जहाँ प्रत्येक छोटे से कुटुम्ब के लिए एक अलग मकान की आवश्यकता है। स्वैन नाम की नदी के किनारे सड़क और रहने के मकान बने हैं। नदी बल खाकर उस स्थान पर एक झील के समान हो गई है। मकान अधिकतर छोटे छोटे परन्तु बड़े सुन्दर हैं। सबके साथ पुष्पों से लदी हुई छोटी छोटी वाटिकाएँ हैं। यूनिवर्सिटी के एक प्रोफ़ेसर हमको आकर यूनिवर्सिटी ले गये। वहाँ खाना खिलाया और लगभग सारे दिन घूम-फिर कर हम वापस जहाज़ पर आगये।

फ्रीमेंटल के बाद दूसरा बन्दरगाह जहाँ जहाज़ ठहरा एडेलेड है। यह दक्षिण आस्ट्रेलिया की राजधानी है। इसकी जन-संख्या ३,१६,००० है। काफ़ी बड़ा नगर है। इसमें ऊँचे ऊँचे कई मंज़िलों के मकान हैं। सड़कें इतनी चौड़ी हैं कि किसी दूसरे स्थान पर मैंने इतनी बड़ी और चौड़ी सड़कें नहीं देखी थीं। यहाँ भी हम दिन भर मोटर पर घूम-फिर कर नगर देखते रहे। इस नगर का फैलाव बहुत बड़ा है।

यह मेलबोर्न का दृश्य है। सफ़ेद और बड़ी इमारत जो ऊपर दिख रही है वह युद्ध-स्मारक है।
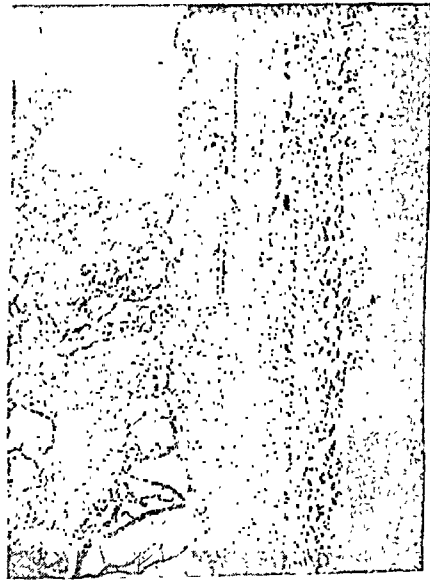
आस्ट्रेलिया की भेड़ों का एक झुंड

मीलों तक लम्बा-चौड़ा है। कई अलग अलग बस्तियाँ हैं, जिनके बीच में पर्याप्त भूमि छोड़कर फलों के और अन्य वृक्षों के उद्यान लगा दिये हैं। इससे नागरिकों को खुली पवन और भूमि मिल गई है। यह नगर मौंट लौफ्टी नाम की पर्वत-माला के अंचल में बसा है। हमें लोग इस पर्वत की चोटी पर ले गये। आस्ट्रेलिया के पर्वत कुछ बहुत ऊँचे नहीं होते। मौंट लौफ्टी ढाई-तीन हज़ार फ़ुट से अधिक ऊँचा नहीं है। पहाड़ की चोटी पर एक सुन्दर छोटा-सा होटल है। वहाँ जाकर हमने कुछ खाया-पिया। लकड़ी का साफ़-सुथरा होटल परन्तु बहुत सादा। वहाँ बढ़िया सामान, कालीन आदि कुछ नहीं थे। परन्तु वायुमंडल शान्ति और सौन्दर्य्य से भरा हुआ था। सारा पहाड़ पाइन और योकलिप्टस के वृक्षों से लदा था। स्थान स्थान पर आस्ट्रेलिया की विख्यात जर्सी नाम की गायें चर रही थीं। हरियाली बहुत नहीं, परन्तु पर्वत सूखा भी नहीं था। यहाँ से सारे नगर का दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता था। वहाँ भी हमें कुछ मित्र मिल गये थे, जो घुमाते-फिराते रहे। लीग आफ़-नेशंस की यूनियन की ओर से हमको खाना भी दिया गया, जिसमें पर्याप्त स्त्री-पुरुष आये थे।

१७ जनवरी को सवेरे हम मेलबोर्न पहुँचे और जहाज़ से उतर गये। मेलबोर्न वहाँ के विक्टोरिया-प्रदेश की राजधानी है। यहाँ की जन-संख्या ९,५५,००० है। बड़ा समृद्धिशाली नगर है। मेलबोर्न और सिडनी संसार के बड़े से बड़े नगरों से टक्कर ले सकते हैं। यहाँ एक सेंटकिल नाम की सड़क है, जो कई मील लम्बी है। इसके

बीचोबीच रंग-बिरंगे सुन्दर पुष्पों की क्यारियाँ बनी हैं। एक ओर पहाड़ी है, दूसरी ओर नदी बह रही है। ऐसी सुन्दर है कि वहाँ फिरते ही रहने को मन चाहता है। बड़े बड़े सुरक्षित उद्यान हैं। इनमें दूर दूर से लाकर वृक्ष और पुष्प लगाये गये हैं। छोटे छोटे ताल-झीलें, जिनमें जल-पक्षी विहार कर रहे हैं। यहाँ मैंने काली बत्तखें देखीं, जो पहले नहीं देखी थीं। गत महायुद्ध की स्मृति में जो मंदिर बना है उसको वे लोग 'श्राइन' कहते हैं। इसके लिए मेलबोर्न-निवासियों को बड़ा गर्व है। यह मंदिर बड़ा वैभवशाली और सुन्दर है। इसके बीच में एक कुंड बना है। मन्दिर की छत में एक छोटा-सा छेद है जिसमें से प्रत्येक ११ नवम्बर को जिस दिन महायुद्ध की संधि हुई थी, सूर्य्य का प्रकाश आकर कुंड में पड़ता है। चारों ओर पुस्तकें रक्खी हैं, जिनमें युद्ध में मरनेवाले हुतात्माओं के नाम छपे हुए हैं। आस्ट्रेलिया ने महायुद्ध में बहुत बड़ा भाग लिया था। अपनी संख्या के अनुपात से पर्याप्त पैसा दिया था और सैनिक भी भेजे थे। इसी लिए यहाँ स्थान स्थान पर महायुद्ध के स्मारक बने हुए हैं। इस बड़े 'श्राइन' के पास ही ताँबे का एक छोटा-सा गधा बना है, जिसे एक सिपाही पकड़े हुए ले जा रहा है। कहते हैं, सिपाही इस गधे पर लादकर बहुत-से घायलों को युद्ध-क्षेत्र से बाहर ले आया था और इस प्रकार उनकी प्राण-रक्षा की गई थी। यह गधे और सिपाही की छोटी-सी मूर्ति बड़ी सुन्दर है। मनुष्यों का गधे के प्रति इस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करना, यह भावना भी कितनी उच्च है।
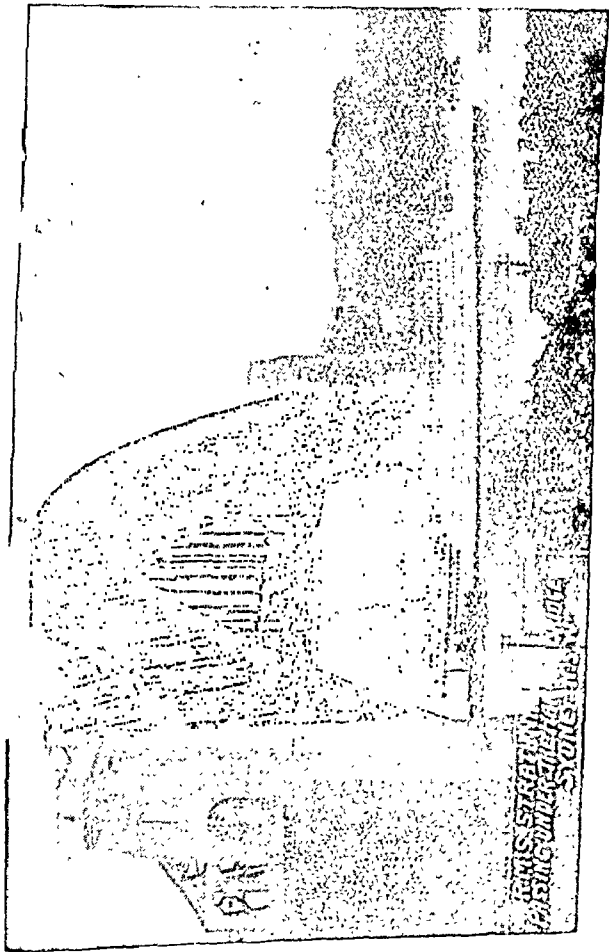
सिडनी बन्दरगाह पर एक पुल जिसके नीचे से बड़े-बड़े युद्ध-पोत लाँघ जाते हैं

यहाँ का पुस्तकालय देखने के योग्य है। बड़े भारी गोल गुम्बद भीतर धरती से छत तक सहस्रों पुस्तकें प्रत्येक विषय पर पटी पड़ी । एक ओर प्रदर्शनी के ढंग पर विक्टोरिया प्रदेश की सब उपज नमूने, वहाँ के व्यवसाय, उनके काम करने के यंत्र, आँकड़े आदि न रक्खे हैं। यहीं एक अजायब-घर भी है। इसमें आस्ट्रेलिया के ादि निवासियों के सम्बन्ध में जो सामान, चित्र और अन्य वस्तुएँ खाई गई हैं वे बहुत शिक्षाप्रद हैं। अजायब-घर के इस विभाग में नुष्य कई घंटे भले प्रकार बिता सकता है। मेलबोर्न के पास भी र्न भली नाम का एक पहाड़ है। एक मित्र हमें वहाँ ले गये थे। ाँ भी सुन्दर सुन्दर मकान हैं। अनेक लोग जलवायु-परिवर्तन के ए कुछ दिन वहाँ जाकर रहते हैं। सादे, सुन्दर होटल हैं, जहाँ ने-पीने की सब सामग्री मिल जाती है। वहीं जाकर हमने भी ाना खाया था।

यहाँ और सिडनी में होटल काफी अच्छे और शान के हैं। ामान बढ़िया, कमरे अच्छे और आराम के हैं। परन्तु आस्ट्रेलिया में हीं भी होटलों में नौकर अच्छा काम नहीं करते। खाने की मेज़ पर क एक घंटा बैठकर प्रतीक्षा करनी पड़ती थी तब खाना मिलता था। ह दशा बड़े से बड़े होटल में थी। कहते हैं, वहाँ नौकर बड़ी ठिनाई से मिलते हैं, इसलिए बुरा काम करने पर भी नौकर को काल नहीं सकते और जैसे-तैसे निर्वाह करना पड़ता है। घरों में ससे भी अधिक बुरी दशा है। वहाँ तो नौकरों का मिलना असम्भव- ा हो गया है, जिसके कारण बहुत लोग घरों को छोड़कर बोर्डिङ्ग-

घरों में रहना पसन्द करते हैं। नौकरों के न मिलने के कारण लो को अपने स्वभाव और रहन-सहन के ढंग बिलकुल बदलने रहे हैं।

कैनबेरा आस्ट्रेलिया की राजधानी है। इस नगर की उपमा न दिल्ली से बहुधा दी जाती है। यह आस्ट्रेलिया का नया नगर है औ अभी बस रहा है। जब आस्ट्रेलिया संघराज्य में परिणत हुआ अर्थात् जब वहाँ की रियासतें सब मिलकर एक राजनैतिक प्रबन्ध मे सम्मिलित हुई तब उनकी राजधानी कहाँ हो, यह प्रश्न उठा। सब प्रान्त यही चाहते थे कि हमारे प्रदेश में राजधानी बनाई जाय इसलिए इस प्रान्तिक झगड़े को मिटाने के लिए अलग भूमि खरीदकर वहाँ 'कैनबेरा' नाम का नगर बसाया गया। १९२४ में इसकी स्थापना हुई और तब से अब तक यह बराबर बनता और बढ़ता ही जाता है। इसकी बनावट कुछ नई दिल्ली के समान है। परन्तु नई दिल्ली से यह आकार में बहुत छोटा है। इसके चारों ओर पर्वत हैं। शहर भी छोटी-बड़ी पहाड़ियों पर बसा है। नई दिल्ली के समान ही फूलों की बहुतायत है। एक पूरे बाग़ के बाग़ में निरा गुलाब ही गुलाब है।

वहाँ के लोगों का प्रयत्न है कि कैनबेरा को वे शिक्षा और सभ्यता का केन्द्र बनावें। भिन्न भिन्न विषयों के अनुसन्धान-कार्यालय वहाँ खोले गये हैं। विश्वविद्यालय बनाने का विचार है। बड़े बड़े स्कूल हैं। सब दफ़्तर भी धीरे धीरे वहाँ उठकर आते जाते हैं। इस तरह वे अपने नगर को सुन्दर और महत्त्वपूर्ण बना रहे हैं। इस

समय तो कैनबेरा की मनुष्य-संख्या ८,००० है, परन्तु वह दिनोंदि
बढ़ती जा रही है। सिडनी न्यू साउथ वेल्स की राजधानी है। य
आस्ट्रेलिया का सबसे बड़ा नगर है और अँगरेजी साम्राज्य में इस
स्थान दूसरा है। इसकी जन-संख्या १०,८२,००० है। इसकी सड़
अन्य नगरों की तुलना में तनिक छोटी हैं। बस्ती भी गुंजान है
मकान वैसे दूर दूर और खुले खुले नहीं, जैसे अन्य नगरों में है
यहाँ का चिड़िया-घर बहुत सुन्दर है। यहाँ पशु-पक्षी तो भला संस
भर के एकत्र किये ही हैं, परन्तु इसकी बनावट और सजावट भ
बहुत भली प्रतीत हुई। वह समुद्र के किनारे एक ऊँची पहाड़ी
बना है और जो जन्तु जिस प्रदेश का है उसका आवास उसके
की सभ्यता एवं कला के अनुकूल बनाया गया है।

भारतवर्ष का हाथी जिस गृह में रहता है उसकी बनाव
भारतवर्षीय कला भरी हुई है। गुम्बद और मीनार दूर से ही देख
भारत की याद हो आती है। इसी प्रकार अफ्रीका के जन्तु
रक्खे गये हैं वहाँ के मकान, जान पड़ता है, मिस्र अथवा मराके
उठा लाये गये हैं। बनैले पशुओं के लिए जङ्गली पहाड़ियाँ
गुफायें ठीक ऐसी बनी हैं, जैसी निर्जन जङ्गल में सचमुच
पड़ती हैं। शेष स्थान रंग-रंग के सुन्दर फूलों, क्यारियों और
से भरा पड़ा है। वहीं एक बहुत अच्छा होटल भी है, जहाँ
लोग खाते-पीते और नाश्ता करते हैं।

सिडनी संसार भर में एक विशाल बन्दरगाह है। इसके
ही वह अद्भुत भी है। समुद्र का बहुत बड़ा भाग तीन ओ

छोटी छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ है। केवल एक ओर छोटा-स भाग उन्मुक्त सागर से जा मिला है। ऐसा लगता है, मानों समुद्र ं आने-जाने के लिए यह द्वार बना हो। चारों ओर की पहाड़ियाँ ह हरे वृक्षों और सुन्दर भवनों से भरी पड़ी हैं। शांत सरोवर के समान इस बन्दरगाह में पचासों नावें स्त्री-पुरुषों से भरी चलती-फिरती देख पड़ती हैं। सहस्रों स्त्री-पुरुष छुट्टी का समय बिताने के लिए इन डोंगियों में बैठकर समुद्र की सैर किया करते हैं। यहाँ नाच-गाना भी होता है। चाय-पानी भी चलता है। चाँदनी रातों में इन डोंगियों पर यह सैर बहुत पसन्द की जाती है।

जिन दिनों हम सिडनी गये थे, उन दिनों आस्ट्रेलिया की १५०वीं वर्षगाँठ मनाई जा रही थी। समूचा नगर झंडियों और पताकाओं से अलंकृत किया गया था। प्रकाश किया गया था, जलूस निकाले गये थे, बन्दरगाह में आतशबाज़ी छोड़ी गई थी, और बहुत-सी नावों को बिजली के प्रकाश से सजाकर उनकी यात्रा निकाली गई थी। इस यात्रा को विनिशन कार्निवल का नाम दिया गया था। उस रात हमारा निमंत्रण गवर्नर जेनरल के घर पर था और वहाँ से हमने यह सब कौतुक देखा था। उस रात का दृश्य इतना सुन्दर और मनोरम था कि वह कभी भूल नहीं सकता। गवर्नर जेनरल के विशाल लॉनों पर सब अतिथि शान्ति से कुर्सियों पर बैठे थे। सामने समुद्र में नावों पर से भिन्न भिन्न रंग की आतशबाज़ी छुड़ाई जा रही थी, जो नील आकाश को विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों से भर देती थी। तेज़ चमकता हुआ सर्चलाइट का प्रकाश चारों ओर से इस प्रकार छोड़ा

जहाज़ का बैठने का कमरा

।। रहा था कि आकाश पर काले वादलों में विजली-सी चमकती प्रतीत होती थी।
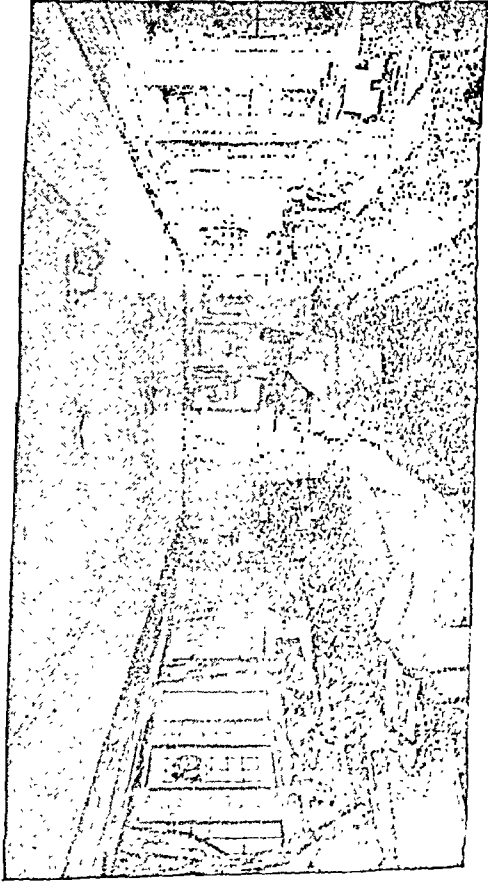
नावों की यात्रा भी वहुत चित्ताकर्षक थी। उन पर भाँति भाँति का बिजली का प्रकाश किया गया था। एक नाव पर कैप्टन फ़िलिप के प्रथम वार आस्ट्रेलिया पहुँचने का चित्र दिखाया गया था। एक नाव हंस के आकार की वनाई गई थी, जो सोने के चमकते हुए सुनहरे हंस-जैसी तैरती-सी दीखती थी। इसी प्रकार नये नये आकार की नावें सजी-धजी दृष्टि के सामने से निकल गईं।

इसी वार्षिकोत्सव के कारण उन दिनों वहुत बड़े वड़े उत्सव मनाये जा रहे थे। अँगरेज़ी साम्राज्य के प्रत्येक भाग से प्रतिनिधि आये थे। उनको सम्मानित करने के लिए गवर्नर, गवर्नर-जेनरल, लार्ड मेयर सव ही वड़े वड़े भोज दे रहे थे। उन अवसरों पर हमको वहाँ के वड़े वड़े स्त्री-पुरुषों से मिलने और उनसे वार्तालाप करने का अवसर मिला।

वहाँ के लोग जाति के तो अँगरेज़ हैं, परन्तु अँगरेज़ों के समान नकचढ़े नहीं हैं। हमको परदेशी देखकर वे लोग स्वयं ही हमारे निकट आते और अपना परिचय देकर वार्तालाप आरम्भ कर देते थे। 'वेलकम टू आस्ट्रेलिया' (आस्ट्रेलिया आने पर आपका स्वागत है) यह वाक्य पचासों स्त्री-पुरुषों ने हमसे कहा होगा। लोग वहुत हँसमुख हैं, परन्तु इन वड़े-वड़े उत्सवों पर जहाँ देश के वड़े से वड़े लोग उपस्थित थे, वह धूमधाम नहीं थी जो ऐसे सम्मेलनों में लन्दन में देखी जाती है। टाउन-हाल में एक वहुत वड़ा नाच दिया

गया था जिसे पायेनियर्स बॉल कहते हैं। इसमें कई सौ स्त्री-पुरुष
थे और सब सवा सौ, डेढ़ सौ वर्ष पहले की पोशाकें पहने हुए
स्त्रियाँ सायों के नीचे कमर पर बड़े बड़े जाली के जँगले लगाये अ
असली आकार से कई गुना आकार बढ़ाये महारानी विक्टोरिया
समय के वस्त्र पहने फिर रही थीं और पुरुष बारीक जालियों को ग
में बाँधे और हाथ के कफ़ों में लगाये उसी युग के नाइट और ला
की पोशाक में उपस्थित थे। उन दिनों उन्होंने हॉल कमरे की सजाव
भी ऐसी कर रक्खी थी जिससे उस युग की आस्ट्रेलिया की याद
उठे। हॉल में प्रवेश करते ही ऐसा आभास होता था, जैसे किर
पहाड़ की गुफा में घुस आये हैं, जहाँ चारों ओर दीवारों पर जङ्गल
बेलें लगी हैं। आधी रात के बाद तक नाच होता रहा। १२ बजे
लगभग दो सहस्र स्त्री-पुरुषों को खाना खिलाया गया।

(२)

आस्ट्रेलियावालों को अपने देश से बहुत प्रेम और उसकी उन्नति
का बड़ा अभिमान है। अमरीकनों की भाँति वे भी जाति के अँगरेज
हैं, परन्तु अब अपने आपको कभी अँगरेज नहीं कहते—सदा
'आस्ट्रेलियन' ही कहते हैं। अमरीकनों में और अँगरेजों में तो बड़ा
भारी वैमनस्य है, बहुत प्रतिस्पर्धा है और दोनों के देश भी अलग-
अलग स्वतन्त्र हैं। पर आस्ट्रेलिया अँगरेजी राज्य का एक अङ्ग है
और अन्य सब उपनिवेशों से अधिक राजभक्त है। परन्तु फिर भी
आस्ट्रेलियनों के मन में यह बात चुभा करती है कि अँगरेज लोग
हमको अपने बराबर नहीं मानते। उनको ऐसा लगता है और यह

बात सच भी है कि साधारण रीति से अँगरेज़ लोग आस्ट्रेलियनों को अपने से नीची श्रेणी का मानते हैं। सच तो यह है कि जिस भाँति स्वयं आस्ट्रेलियन अँगरेज़ों को और इँग्लिस्तान को आदर्श रूप में ग्रहण करते हैं उससे भी यह टपकता है कि वे अपने आपको अँगरेज़ों से कुछ घटकर समझते हैं। फिर भी जब अँगरेज़ों की ओर से उनके प्रति अभिमान का व्यवहार होता है तब वे बहुत बुरा मान जाते हैं। जो हो, जाति से अँगरेज़ होने के कारण उन्होंने अपने जीवन को अँगरेज़ी साँचे में ढाला है। उनके शहर लंदन, बर्मिङ्घम, ग्लासगो आदि के समान हैं। उनकी बड़ी-बड़ी इमारतें ऐसी ही बनी हैं जैसी रानी विक्टोरिया के समय में इँग्लिस्तान में बना करती थीं। पार्लिया-मेंट हाउस में प्रवेश करने पर ऐसा लगता है मानों लंदन के हाउस आफ़ कामन्स में आ गये। दीवारों पर वैसी ही सजावट-बनावट, वैसी ही मूर्तियाँ, यहाँ तक कि कुर्सी, मेज़ आदि के भी वही नमूने दिखाई देते हैं। 'अपर हाउस' में राजसी सत्ता का लाल रंग और 'लोअर हाउस' में प्रजातन्त्र का हरा रंग। फ़र्श पर क़ालीनों में बेल-बूटे बने हुए हैं, जिससे आस्ट्रेलिया की विशेषता दिखाने का अभिप्राय

देश की नक़ल करेंगे भी तो कहाँ तक? सब जानते हैं कि इँग्लिस्त में क्रिसमस के साथ घोर जाड़े का अटूट सम्बन्ध है। क्रिसमस ध्यान आते ही जाड़ा-पाला—कलेजा कँपानेवाली शीतल वायु ध्यान आ जाती है और साथ ही सुनहरी आग जलती हुई चिमनी-यु आराम का कमरा, खाने के लिए गरम-गरम टर्की और जलती हु शराब के साथ, सूखे मेवों से भरी हुई पुडिंग—ये सब मन की आँख में दिखाई देने लगते हैं। पर आस्ट्रेलिया में क्रिसमस ठीक गर्मी दिनों में आता है। जो मास इँग्लिस्तान में और हमारे देश में सर्द के होते हैं, वे वहाँ गर्मी के और जो हमारे देश में गर्मी के हैं वे वह सर्दी के होते हैं। अतएव दिसम्बर के अन्त में क्रिसमस के दिनों मे वहाँ ऐसी कड़ी गर्मी पड़ती है कि घरों में बैठना दूभर हो जाता है। इसलिए वे लोग क्रिसमस मनाने का अपना ढंग बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं। मनुष्य में रूढ़ि-पालन का जो भाव है उसके कारण अभी तक तो क्रिसमस उसी पुरानी रीति से मनाया जाता है। खाने के लिए उबलती हुई गर्मी में ठीक वही चीज़ें बनाई जाती हैं जो हिम गिरते हुए ठंडे मौसम के लिए उपयुक्त थीं। परन्तु लोग इस रूढ़ि-पालन की मूर्खता को अब समझने लगे हैं और देश, काल तथा स्थिति के अनुसार ही अपने रीति-रवाज बनाते जा रहे हैं।

वे लोग खुली हवा में रहने के बड़े शौक़ीन हैं। इसी लिए उनके सब खेल ऐसे हैं जो उन्हें घरों से बाहर आकाश के तले उन्मुक्त वायु में रखते हैं। क्रिकेट, टेनिस, फ़ुटबाल, घुड़दौड़, तैरना, नावें चलाना अर्थात् समुद्र पर नौका-दौड़ करना और समुद्र की लहरों के साथ

खेलना। हज़ारों बल्कि लाखों स्त्री-पुरुष इन सब खेलों को रात-दिन खेला करते हैं। सब नगरों में वरन् बड़े नगरों के मुहल्लों में भी ा खेलने के लिए क्लब और सोसाइटियाँ बनी हुई हैं। शनि र रविवार को किधर भी जाइए आपको क्रिकेट, फ़ुटबाल और नेस का खेल दिखाई देगा। यही कारण है कि कई खेलों में ा समय आस्ट्रेलिया ही संसार में सबसे अग्रसर है।

यहाँ का समुद्र-तट मीलों तक फैला हुआ है और नहाने की पयुक्तता के लिए संसार भर में विख्यात है। यहाँवाले इसका पूरा-रा लाभ उठाते हैं। लाखों स्त्री-पुरुष रात-दिन समुद्र में घुसे रहते हैं। गर्मियों में कभी-कभी सारी-सारी रात जल-क्रीड़ा होती रहती है। समुद्र के किनारे पर बिजली का प्रकाश और प्रत्येक प्रकार की सुविधा है। तैराक-स्वयंसेवकों की पल्टनें बनी हुई हैं। इनके सदस्य किनारों पर फिरा करते और एक प्रकार से पहरा देते हैं। ज्यों ही कोई व्यक्ति ख़तरे में पड़ा कि वे सहायता के लिए आगये। इन सेवकों की अलग अलग रंगों की वर्दियाँ रहती हैं और उन्हीं को पहनकर वे अपना काम करते हैं। गर्मी के दिनों में किनारों पर रंग-बिरंगे बड़े-बड़े छाते फैलाये हुए, चमकती हुई धूप में एक एक स्थान पर कई-कई सहस्र स्त्री-पुरुष स्नान के वस्त्र पहने रेते में लेटे-बैठे और खेल करते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार समुद्र की लहरों के साथ जो खेल होता है वह भी बहुत रोचक और साहस बढ़ानेवाला है। स्त्री-पुरुष उठती हुई लहरों के साथ उठते और लौटती हुई लहरों के साथ नीचे जाते हैं। इसी प्रकार मीलों तक समुद्र में निकल जाते

हैं। जिसने समुद्र की लहरों का कभी सामना किया है वह अनु
कर सकता है कि इस खेल के लिए कितने साहस की आवश्य
होगी। यहाँ के घोड़े जगद्विख्यात हैं। दूर दूर से यहाँ के ह्वेलरों
माँग आती है। इन्हीं घोड़ों पर यहाँ के स्त्री-पुरुष ख़ूब सवारी क
हैं। बहुतेरी स्त्रियाँ वैसी ही अच्छी सवार होती हैं जैसे पुरुष।
से मोटरगाड़ियाँ निकली हैं और देश में सड़कें भी बन गई हैं तब
सवारी का रवाज कम हो गया है, फिर भी देश के भीतरी भागों
अभी तक अधिकतर घोड़ों से ही काम लेना पड़ता है, इसी लि
घोड़े की सवारी की रुचि लोगों में बहुत है। यहाँ के लोग पिकनि
के बड़े शौक़ीन हैं। सप्ताह में दो-एक बार तो अवश्य ही खाना-पी
लेकर घर से बाहर निकल खड़े होते हैं। बस्ती से दूर पहाड़ों औ
जंगलों में स्थान-स्थान पर यह लिखा हुआ मिलता है कि "यहाँ गर
पानी मिलता है"। मेरी समझ में नहीं आया कि इस गर्म पानी के
मिलने का क्या अर्थ है। पीछे मालूम हुआ कि पिकनिकवालों क
चाय के लिए यह पानी तैयार रहता है। वहीं जंगलों में धूप-पानी से
बचने के लिए फ़स की छोटी छोटी कुटियाँ भी बनी रहती हैं। इनमें
मेज़ और लकड़ी की दो-चार बेंचें पड़ी होती हैं। कुछ मित्रों के
साथ ऐसे ही एक स्थान पर हमने जाकर पिकनिक किया था।

भू-शास्त्रज्ञों का विचार है कि आस्ट्रेलिया पृथ्वी का सबसे पुराना
प्रदेश है। कितना पुराना है सो तो कौन जाने, परन्तु सिडनी के पास
७१ मील की दूरी पर ग्लेनोलेन केव्स के नाम की कुछ स्टेलगटाइट
और स्टेलगमाइट की गुफायें हैं। पर्वतों के भीतर नदियों की वेगवती

हे स्ट्रीट (पर्थ) वेस्ट आस्ट्रेलिया

धाराओं ने इन गुफाओं का निर्माण किया है। इन गुफाओं के भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार की जो मूर्तियाँ बनी हैं वे जल में घुले हुए चूने की एक एक बूँद टपकने से बनी हैं। ये गुफायें संख्या में दस हैं और इतनी विशाल हैं कि इनको २-३ दिन में भी घूम-फिर कर देख लेना कठिन है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि एक-एक बूँद जल के गिरने से जब इतनी विशाल आकृतियाँ बन गईं तब उनके बनने में कितने करोड़ वर्ष या कितने मन्वन्तर लगे होंगे।

समय के अभाव के कारण इन गुफाओं में से केवल एक को देखने के लिए हम गये थे। इस गुफा का वृत्तान्त लिखे बिना हमारी यात्रा का वर्णन अपूर्ण ही रह जाता है। इसलिए मैं आवश्यक समझती हूँ कि उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँ। ये सब गुफायें एक दूसरे के पास पास ही हैं। सरकार की ओर से इनकी देख-रेख का प्रबन्ध है। आदि से अन्त तक सारी गुफाओं में बिजली का प्रकाश है। यात्रियों को दिखाने और समझानेवाले 'गाइड' विद्यमान रहते हैं। जो लोग जिस गुफा को देखना चाहते हैं उसका गाइड १५-२० यात्रियों का एक गुट बनाकर ले जाता है और देखने के योग्य जो जो वस्तुएँ हैं उनको दिखाकर समझाता जाता है। हम सबसे छोटी गुफा में गये थे, जिसको लगभग २ घण्टे में देख पाया। विशाल पर्वत में एक छोटे से द्वार के समान छेद में से घुसकर हम पर्वत के पेट में दूर तक चले गये। बिजली के प्रकाश में चमकती हुई लाइमस्टोन की संगमरमर के सदृश सफ़ेद और गुलाबी एवं कहीं-कहीं नीली और काली भिन्न-भिन्न आकृतियाँ देखकर मैं तो स्तम्भित-सी

रह गई। बाहर से पर्वत को देखकर कौन अनुमान कर सकता कि इसके पेट में प्रकृति ने ऐसा अद्भुत अजायबघर बना रक्खा है कहीं गोल-गोल सफ़ेद लम्बे स्तम्भ धरती से उठकर छत तक पहुँ हुए दिखाई देते थे। कहीं तरकारीवाले की दूकान-सी जान पड़ थी, जिसमें सफ़ेद मूलियाँ, गुलाबी गाजरें रक्खी दीखती थीं। कह मुर्गी, कहीं बत्तख बनी हुई मालूम देती थी। एक स्थान पर एक मूर्ति थी, जिसे हमारे गाइड ने 'शार्लोटेम्पल' का नाम दे रक्खा था। एव स्थान 'क्रिस्टल-पैलेस' कहलाता था। वहाँ श्वेत क्रिस्टल की वाटिका सी लगी दिखाई देती थी। वृक्ष, शाखायें, पत्तियाँ, पौधे सब इस अद्भुत पत्थर में बने हुए दिखाई देते थे। मुझे तो स्थान स्थान पर शिवलिंग का आकार भी दीखता था। सारांश यह कि ये गुफायें क्या थीं, प्रकृति के निर्माण-कार्य का भाण्डार थीं। इनको देखकर मुझे ऐसा लगा कि ७,००० मील की यात्रा यदि केवल उन गुफाओं को ही देखने के लिए की जाती तो भी अनुचित न था।

आस्ट्रेलिया इतना पुराना होने पर भी सभ्यता में सारे संसार में सबसे छोटा और नया है। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि जो प्रदेश पृथ्वी पर सबसे पहले बना हो, वहाँ किसी प्रकार की पुरानी सभ्यता के कोई चिह्न न मिलें। लगभग सारे संसार में पुरानी-पुरानी सभ्यताओं का पता चल रहा है। भारतवर्ष में तो पग-पग पर कोई न कोई पुरानी इमारत, पुरानी मूर्तियाँ, पुराने सामान दिखलाई देते हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में ईसामसीह से ढाई-तीन सहस्र वर्ष पहले तक के चिह्न निकले हैं। एशिया भर में, योरप में, अमरीका

जंगली मनुष्य बसे हुए मिले। ये लोग इतने जंगली थे कि जोतना बोना, कातना, बुनना, मकान बनाना कुछ भी नहीं जानते थे। वृक्षों की खालों से तन ढँकते, उन्हीं की डाल और पत्तों से आँधी-पानी से बचने के लिए झोपड़ियाँ बना लेते थे। शिकार पर गुज़र करते थे। बूमरेंग नाम की लकड़ी की एक प्रकार की तलवार बनाते थे और उसको शिकार पर ऐसी दक्षता से फेंकते थे कि शिकार मारकर बूमरेंग फिर उनके पास लौट आती थी। अभी तक वे लोग इसी दशा में रहते हैं। बूमरेंग फेंकते हुए मैंने एक जङ्गली मनुष्य को देखा था। बड़ी चतुराई से वह बूमरेंग को फेंकता था जो गोल चक्कर काट-कर फिर उसके पास ही लौट आती थी। मैंने भी उससे सीखने का प्रयत्न किया, परन्तु बूमरेंग का प्रयोग तो महीनों बल्कि वर्षों के अभ्यास के बाद आता है।

इन सीधे-सादे जङ्गली मनुष्यों के साथ आगन्तुक अँगरेज़ों ने बहुत बुरा व्यवहार किया। सभ्यता के छल-कपट और स्वार्थपरता से वे नितान्त अपरिचित थे। अजनबी मनुष्यों को देखकर न वे उनसे डरे, न उन पर आक्रमण किया। अँगरेज़ लोगों ने उनकी सारी भूमि उनसे ले ली। कोई कोई उदाहरण तो ऐसा है कि एक दियासलाई के बक्स के लिए या एक पीतल या काँच की चूड़ी के लिए उनके अँगूठे लगवाकर सैकड़ों एकड़ भूमि लोगों ने अपने नाम लिखवा ली। अँगूठे लगवाने और पर्चा लिखवाने की बात उन जङ्गली आदि निवासियों के सम्बन्ध में आवश्यक नहीं थी, बल्कि इन नामधारी स्वामियों को अपनी सरकार और अपने ही लोगों
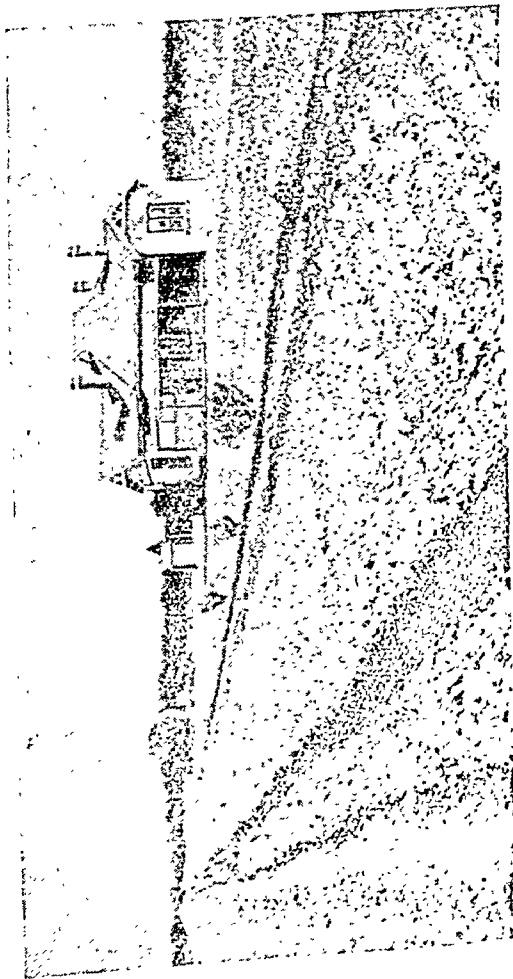
आस्ट्रेलिया का एक कृषि-फार्म

ऽ साथ निबटारा करने के लिए इस आडम्बर की आवश्यकता थी। अतएव इन लोगों के यहाँ बसने के कुछ काल पीछे जब यहाँ क़ानूनी शासन-विधान का प्रबन्ध हुआ तब अँगूठे लगे हुए ये पर्चे इन दूरदर्शी आगन्तुकों के बहुत काम आये। उन्हीं के बल पर भूमि के स्वामित्व का उन्होंने दावा किया।

आनेवाले अँगरेज़ों ने उनसे केवल धरती लेकर ही संतोष नहीं किया, यद्यपि उन बेचारों ने अँगरेज़ों का कुछ भी नहीं बिगाड़ा था तो भी अँगरेज़ों ने अकारण ही उन्हें अपनी बन्दूक़ों से इस प्रकार मार मारकर भगा दिया जैसे कोई शिकारी जङ्गल में जाकर वन-पशुओं का शिकार कर उनका नाश करे। सहस्रों-लाखों की संख्या में ये आदिम-निवासी मार डाले गये, यहाँ तक कि उनकी जाति ही लगभग समाप्त हो गई। अब यहाँ इन लोगों की संख्या ५४,००० रह गई है। ये पीछे हटते-हटते अब महाद्वीप के केन्द्रीय भाग में जा बसे हैं। जल के अभाव और ताप की अधिकता के कारण वह स्थान मनुष्य के रहने योग्य नहीं है। इसलिए इन बेचारों को बहुत कष्ट है। यहाँ तक कि पीने और नहाने तक को पानी नहीं मिलता और न खाने को शिकार। जिन जन्तुओं का शिकार करके ये लोग खाया करते थे वे अधिकतर गोरों ने मार-मारकर समाप्त कर दिये हैं। साँप, छिपकली, केमरू, खरहे आदि इन लोगों का आहार था। इनमें से बड़े जन्तु केमरू, कोआला आदि अब बहुत कम हो गये हैं। परिणाम यह है कि इन आदिम-निवासियों में से बहुत-से अब भीख माँगते हैं। दक्षिण-आस्ट्रेलिया में रेलगाड़ियों और मोटरकारों

पर यात्रियों से भीख माँगते हुए ये अक्सर दिखाई देते हैं। अ
लियन सरकार ने इनको शिक्षा देने और सभ्य बनाने का तनिक
प्रयत्न नहीं किया। उत्तरी भाग में जहाँ इनकी संख्या अधिक है,
मिश्नरियों ने इनके लिए स्कूल खोले हैं, इन्हें पढ़ना-लिखना
वस्त्रादि पहनना सिखाया है और उन्हें ईसाई-धर्म की दीक्षा दी
परन्तु इनका अनुभव यह है कि वे अपने निवास-स्थानों से, जि
वहाँ 'बुश' कहते हैं, बहुत काल तक अलग नहीं रह सकते। थो
दिनों में ही वे उदास हो कपड़ा-लत्ता उतारकर अपने 'बुश' में ि
भाग जाते हैं। आज-कल सरकार का भी ध्यान इस ओर आकृ
हो रहा है कि इस जाति के जो बचे-खुचे लोग रह गये हैं उनकी र
करके उन्हें सभ्य बनाने का उद्योग करना चाहिए। इस विचार
उसने इनके लिए कुछ बस्तियाँ बनाई हैं, जहाँ वे रक्खे गये हैं औ
उनके स्त्री-पुरुषों को काम सिखाया जाता है। उन्हें अधिकतर गृहस्थ
में नौकरी करने का काम सिखाया जाता है। परन्तु इन बस्तियों मे
उनके साथ इतनी रोक-टोक की जाती है कि ये स्वतन्त्र प्रकृति के
लोग उसे सहन नहीं कर सकते और बार-बार जङ्गलों में भाग जाते
हैं। परन्तु परिश्रम करने और सहानुभूति के साथ व्यवहार करने
पर वे लोग सभ्यता की बातें सीख भी जाते हैं।

१७८८ ईसवी के कुछ दिन बाद ही अँगरेज़ी सरकार ने आस्ट्रे-
लिया को अपराधियों के रहने का स्थान बना दिया और उसका वैसा
ही प्रयोग करने लगे जैसा हमारी भारत-सरकार एण्डमन द्वीप का
करती है। जहाज़ भर-भरकर अपराधी वहाँ भेजे जाने लगे। देश

को बना-सँवार कर रहने के योग्य बनाने में इन अपराधियों का बहुत बड़ा हाथ रहा। अब तक वहाँ जो लोग जाकर बस गये थे ये अपराधी उनके सुपुर्द कर दिये गये और वे इनसे मेहनत-मज़दूरी लेने लगे। आस्ट्रेलिया एक वीरान जङ्गल था, जिसे एक प्रकार से मनुष्य का हाथ तक नहीं लगा था। सड़कें बनाना, जङ्गल साफ़ करना, पेड़ लगाना, मकान बनाना, खेती-बारी के लिए धरती तैयार करना प्रभृति सब काम बिलकुल नये सिरे से करने को थे, जो मनुष्यों के हाथों ही हो सकते थे। इसलिए इस समय इन अपराधियों का वहाँ पहुँच जाना देश को बनाने में बहुत काम आया। अन्य उपनिवेशों में गोरों ने मेहनत-मज़दूरी का काम बहुत कुछ काले लोगों से लिया है, परन्तु आस्ट्रेलिया में वे ऐसा नहीं कर सके। कारण यह कि वहाँ के काले आदिम-निवासी कोई परिश्रम नहीं कर सकते। वे पशु-पक्षियों के समान जङ्गल में फिरनेवाले स्वतन्त्र जीव थे, जिनके लिए काम के बन्धन में फँसना असम्भव था। इसलिए गोरे लोग उनसे कोई काम नहीं ले सके और इसी लिए शायद उन्होंने इतनी बड़ी संख्या में और इतनी निर्दयता से उनका संहार कर डाला।

इस सम्बन्ध में एक बहुत रोचक बात सुनने में आई। वह उल्लेखनीय है। अपराधी लोग उन दिनों किसी-न-किसी स्वतन्त्र प्रवासी के अधीन रह कर ही काम कर सकते थे। उनको स्वाधीन रूप से रहने और कार्य करने की आज्ञा नहीं थी। एक प्रकार से उनको अपने स्वामियों के दास बनकर ही जीवन बिताना होता था। उनमें से कइयों ने ऐसा किया कि अपनी स्त्रियों को इँग्लिस्तान से

बुलवा लिया। थोड़े रुपयों में भूमि खरीद कर वे वहाँ बस गईं औ
स्वतन्त्र प्रवासी के रूप में उन्होंने अपने ही पतियों को अपनी भूमि
पर काम करने के लिए रख लिया। इस उपाय से वे अपराधी अपने
ही पत्नियों के दास बनकर रहने लगे और दण्ड भुगत चुकने पर
आनन्द से स्वाधीनता का गार्हस्थ्य-जीवन बिताने लगे।

समुद्र के किनारे-किनारे पूर्व, पश्चिम और दक्षिणी भाग में
अँगरेज़ लोग बड़ी संख्या में आकर बस गये। वे खेती-बारी और
भेड़-घोड़े आदि पालने का काम करने लगे। इन लोगों को परिश्रम
तो बहुत कड़ा करना पड़ा, किन्तु उसका फल भी बड़ा मीठा मिला।
थोड़े ही दिनों में इनको मालूम हो गया कि इस द्वीप की धरती बड़ी
उपजाऊ है; यहाँ गेहूँ, भाँति भाँति की तरकारियाँ और फल
सहज में ही उत्पन्न हो सकते हैं। इसके सिवा पशुओं के पालने के
लिए घास के बड़े बड़े खुले चरागाह इतने हैं कि गाय, बैल, भेड़,
घोड़े प्रभृति लाखों पशु बिना बहुत परिश्रम किये पाले जा सकते हैं।
अतएव उन्होंने पशुओं का पालना आरम्भ किया और उनकी उपज
से मालामाल हो गये। धीरे-धीरे यह भी पता लगा कि यहाँ की
भूमि में भिन्न भिन्न धातुओं की खानें भी हैं। १८८३ ईसवी में
सोने की खान का पता लगा। इसका समाचार मिलते ही संसार
भर में सनसनी फैल गई। सहस्रों स्त्री-पुरुष स्थान-स्थान से, विशेष
करके इँग्लेंड से, रुपया-पैसा लेकर सोने की खोज में आस्ट्रेलिया आ
पहुँचे। दम के दम में जहाँ कल जङ्गल था, वहाँ सहस्रों स्त्री-पुरुषों
का जमाव हो गया। देखते देखते नगर के नगर बसने लगे। इतने

ल्दी मकान कहाँ से आते ? डेरे-तम्बू डाल कर ही लोग रहने गे और छाती फाड़कर धरती खोद खोदकर सोने की खोज करने लगे। सन् १९३५ में यहाँ की खानों से कुल २,३५,००,००० पौंड की धातुएँ निकलीं। बहुतेरे लोग कुछ दिनों में कङ्गाल से लखपती हो गये। इस प्रकार एकदम पैसा हाथ में आ जाने से कई लोग पागल-समान हो गये। शैम्पेन में नहाने और पौंडों, नोटों से प्रकाश करने की बातें उन्हीं दिनों में सुनाई देती थीं।

अब आज-कल समस्त आस्ट्रेलिया की जन-संख्या साठ-सत्तर लाख के बीच में है। इनमें केवल ५४,००० काले आदिम-निवासी और शेष लगभग सभी अँगरेज़ जाति के हैं। योरप के अन्य देशों के कुछ लोग हैं अवश्य, परन्तु उनकी संख्या नहीं के बराबर है। आस्ट्रेलिया-निवासी सिवा अँगरेज़ों के किसी अन्य जातिवालों का अपने देश में आना पसन्द नहीं करते। देश को केवल गोरे ही लोगों से बसाने की नीति तो उनकी है ही, जिसके अनुसार वे किसी काले आदमी को अपने देश में रहने के लिए घुसने नहीं देते। परन्तु इसके उपरान्त अँगरेज़ों के सिवा अन्य गोरों के आकर बसने में भी वे भाँति-भाँति की रुकावटें डालते हैं। अँगरेज़ बड़ी संख्या में वहाँ आकर बसें, इसके भिन्न-भिन्न उपाय करते हैं। परन्तु जितना शीघ्र वे अपनी संख्या बढ़ाना चाहते हैं, उतना शीघ्र इस नीति के रहते हुए उनकी संख्या बढ़ नहीं सकती। उनके सामने यह एक बहुत जटिल प्रश्न उपस्थित रहता है कि किस भाँति वे अपनी संख्या को बढ़ावें। इतना बड़ा देश जो आकार में भारतवर्ष से भी बड़ा है,

जिसके समुद्री किनारे सहस्रों मील तक फैले हुए हैं, उसकी ६० लाख या ७० लाख की जन-संख्या से कैसे हो सकती जापान जब से चीन में अपना पसारा फैला रहा है तब से वहाँव के मन में एक भय-सा बैठ गया है और वे रात दिन इसी चिन्ता रहते हैं कि किस उपाय से जन-संख्या बढ़ाकर वे अपनी रक्षा प्रबन्ध करें। अभी तक तो उनकी रक्षा अँगरेज़ी समुद्री बेड़े के द्व होती है, परन्तु वे यह नहीं जानते कि यह प्रबन्ध कब तक च सकेगा। इसी लिए उनमें से कुछ दूरदर्शी लोग यह कहने लगे हैं आस्ट्रेलिया में भारतवासियों को आने देना चाहिए, जिससे आ समय पर वे उनका बचाव कर सकें।

(३)

जिन चीज़ों से आस्ट्रेलियावाले धनी हुए हैं उनमें सबसे ध भाग भेड़ों का है। इस समय आस्ट्रेलिया में १०,८६,००,००० भे पली हुई हैं। पशुओं के पालन-पोषण के लिए वहाँ की जल-वा बहुत उपयुक्त है। हरी हरी पुष्टिकारक घास अधिक पर्याप्त है।

एक एक गोरा सहस्रों भेड़ें पालता है। एक एक के पास गल्ला ५०० भेड़ों का होता है, परन्तु बड़े हैं। ७३ मनुष्य इस समय पचास पचार पाल रहे हैं। पाठक अनुमान कर सव एक एक मनुष्य के पास कितनी अधिक इस भूमि में ही उसका स्वामी अपने है। बड़े बड़े ज़मींदार अपनी बिजली, अ

पना निजी प्रबन्ध कर लेते हैं। मकान भी अच्छे प्रकार के सामान भरे रखते हैं। परन्तु काम के लिए इनके पास बहुत कम लोग ते हैं। इन ज़मींदार गड़रियों का जीवन बिलकुल रसहीन होता है। न्हें नगर से मीलों दूर रहना पड़ता है। मिलने और बात करने को नुष्य नहीं मिलते। भेड़ों में ही इन्हें अपना जीवन बिताना पड़ता है। सूर्योदय होते ही पुरुष बाहर के काम में और स्त्रियाँ घर के काम में जुट जाती हैं। झाड़ू-बुहारू, रसोई, बर्तन माँजना, रसोई बनाना, बच्चे पालना बहुधा घर की अकेली स्त्री को ही करना पड़ता है। सहायता के लिए जो नौकरानी रखते हैं, वह रहे या न रहे, इसका कुछ ठीक नहीं होता। जंगल का यह कड़ा जीवन युवा स्त्री-पुरुष सहन नहीं कर सकते। इसलिए नौकर नहीं रहते और मालिक को बहुधा आप ही सब काम करना पड़ता है। मालिक को भी कुछ कम काम नहीं होता। इतनी भेड़ों की देख-रेख कोई छोटी बात नहीं होती। उनको बीमारी से बचाना, उनके ऊन को कीड़ों से सुरक्षित रखना—समय पर ऊन का काटना, भेड़ों को दवाई के पानी में स्नान कराना, ये सब छोटे काम नहीं। बाल तो आज-कल मशीन से काटे जाते हैं और उनके काटनेवाले विशेषज्ञ होते हैं, जो वर्ष में एक बार आकर मालिक के सामने सब भेड़ों का ऊन काटने का काम कर जाते हैं। ये गड़रिये ज़मींदार जहाँ रहते हैं उस स्थान को 'स्टेशन' कहते हैं। एक ऐसे स्टेशन पर हम भी गये थे। ये लोग कुत्तों से किस प्रकार मनुष्यों का काम लेते हैं, यह देखकर मैं चकित रह गई। वहाँ एक विशेष प्रकार के कुत्ते ऐसे होते हैं जो सुगमता से भेड़ों को चराने और उनकी

देख-रेख करने का काम सीख जाते हैं। मालिक के इशारे पर ये कु
काम करते हैं और एक एक भेड़ का वैसे ही ध्यान रखते हैं जैसे क
मनुष्य। जिस स्टेशन पर हम गये थे उसके मालिक ने हमें दिखा
को अपने एक ऐसे ही कुत्ते को चरती हुई भेड़ों को घर बुला लाने
भेजा। इस छोटे से कुत्ते ने जैसी चतुरता और शीघ्रता से इस का
को किया, वैसे कोई मनुष्य नहीं कर सकता था। मालिक के संके
पर लपकते हुए जाकर बिखरी हुई भेड़ों को क्षण के क्षण में एक
कर स्वामी के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया। मशीन के समा
शीघ्रता से सब काम हो गया। स्वामी ने हमको विश्वास दिलाया कि
उस गल्ले की एक भी भेड़ उससे नहीं छूटी थी।

इन भेड़ों से ऊन की वार्षिक उपज ६,००,००,००० पौंड होती
है। १,२०,००,००० भेड़ों का प्रतिवर्ष वध किया जाता है, जिनका
मांस कुछ देश में कुछ विदेशों में खर्च होता है। सारांश यह कि
भेड़ों का पालन-पोषण आस्ट्रेलिया का सबसे मुख्य व्यवसाय है।
इससे दूसरे दर्जे का व्यवसाय गाय-बैल और घोड़ों का पालना है।
जैसा मैं पहले लिख चुकी हूँ, घोड़ों का व्यवसाय पहले से कुछ कम
हो गया है, फिर भी २२,५०,००० घोड़े इस समय भी वहाँ पले हुए
हैं। और घोड़े पैदा करने में आस्ट्रेलिया का स्थान संसार में
दसवाँ है।

सन् १९२५ में आस्ट्रेलिया में गाय-बैलों की संख्या १,३२,८०,०००
थी। इस दृष्टि से इस देश का दर्जा इस विषय में संसार भर में नवाँ
है। यहाँ प्रतिवर्ष २५,००,००० गाय-बैल मारे जाते हैं। इनका
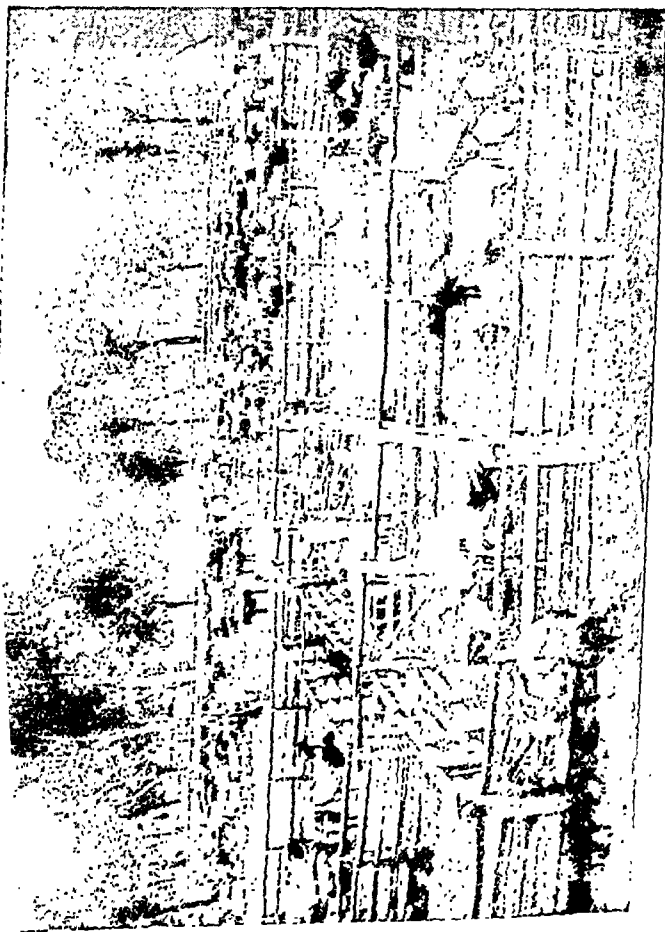
क्वीन्सलैंड में पशुओं का एक बाड़ा

अधिकांश मांस विदेशों को भेजा जाता है। यहाँ दूध, मक्खन और पनीर का भी अच्छा व्यापार है। दूध सुखाकर और बोतलों में भर-कर बाहर भेजा जाता है। मक्खन और पनीर भी बड़े परिमाण में टीनों में बन्द करके विदेशों को जाता है। दूध, मक्खन और पनीर से आस्ट्रेलिया के किसानों को प्रतिवर्ष ४,००,००,००० पौंड की आय है। इसके बाद गेहूँ की उपज है। वहाँ प्रतिवर्ष ३,५०,००,००० पौंड का गेहूँ उत्पन्न होता है। यह भी बाहर जाता है। इस बात को भारतवासी अच्छे प्रकार जानते हैं, क्योंकि आस्ट्रेलिया का गेहूँ भारत में भी बहुत आता है।

मुर्गी के अण्डे का व्यवसाय भी किसानों के लिए अच्छी आय का साधन है।

आस्ट्रेलिया में तम्बाकू, कपास और ऊख भी होते हैं। अब तो वहाँ शक्कर भी बनने लगी है। बाहर से शक्कर का आयात बिलकुल बंद कर दिया गया है। वरन् ५०,००,००० पौंड की शक्कर बाहर भी जाने लगी है। फल भी बहुत अच्छे होते हैं। अंगूर, सेब, नारंगी, आड़ू, केले, माक, अनन्नास लाखों पौंड के पैदा होते हैं। सैकड़ों एकड़ भूमि फल की खेती में लगी है। वहाँ से फल विदेशों को जाता है और मुरब्बे, जैम आदि बनाकर भी उनका व्यापार किया जाता है। तरकारियाँ भी विभिन्न रीतियों से पकाई और टीनों एवं बोतलों में भर कर विदेशों को भेजी जाती हैं।

आस्ट्रेलिया कृषि-प्रधान देश है, परन्तु वे लोग इस बात का भारी प्रयत्न कर रहे हैं कि अपनी आवश्यकता का सब सामान वे

वहीं तैयार कर लें। अतएव काफ़ी कल-कारख़ाने खुल गये हैं। मूल्य की दृष्टि से यदि देखा जाय तो कल-कारख़ानों की उपज वहाँ खेतों की उपज से अधिक होती है। परन्तु वे अपनी बनाई हुई किसी चीज़ को विदेशों में नहीं भेज पाते। कारण यह है कि मज़दूरी अधिक होने के कारण उनकी बनाई हुई चीज़ों का मूल्य बहुत अधिक होता है। वे बाहर के माल को अपने देश में आने से बड़ी कठिनाई से रोक सकते हैं। ५० और ७५ प्रतिसैकड़ा कर लगाने पर भी बाहर का माल, विशेष कर इँग्लैंड का माल, आकर बिकता ही है। धीरे-धीरे वे अपने कारख़ानों को मज़बूत करते जाते हैं और इस बात की आशा रखते हैं कि बहुत शीघ्र वे अपनी आवश्यकताओं को आप ही पूरा करने लगेंगे।

परन्तु अभी तक तो यह दशा है कि उनकी बड़ी बड़ी दूकानों में, जो इँग्लैंड की बड़ी दूकानों से किसी प्रकार कम नहीं हैं, आधे से अधिक माल विदेशों का होता है।

आस्ट्रेलिया इँग्लैंड के समान एक प्रजातंत्र राज्य है। यद्यपि वह अँगरेज़ी साम्राज्य का एक अङ्ग है, तथापि लगभग ७० वर्ष से उसे स्वराज्य प्राप्त है। अँगरेज़ी सरकार उनके आन्तरिक मामलों में बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करती। परन्तु अभी तक भिन्न भिन्न प्रान्तों के गवर्नर और गवर्नर-जनरल इँग्लैंड से ही आते हैं। अब कहीं-कहीं इस बात की चर्चा होने लगी है कि हमारे अपने देश के मनुष्य ही इन पदों पर नियुक्त हों। परन्तु अभी तक अधिकतर आस्ट्रेलिया-निवासी उनको इँग्लैंड से ही बुलाना चाहते हैं।

समस्त आस्ट्रेलिया महाद्वीप प्रान्तों में बँटा हुआ है। प्रान्त रियासत' कहलाते हैं। ये सब रियासतें सन् १९०१ तक अलग अलग ां। उसी वर्ष इन सबको मिला कर आस्ट्रेलिया का एक संयुक्त ाज्य बना दिया गया और तब से यही पद्धति चल रही है। शासन-वेधान अँगरेज़ी शासन-विधान के ही समान है। अधिकतर रेयासतों में दो दो व्यवस्थापक सभायें हैं, जिनके अधीन देश का शासन होता है। वोट का अधिकार सब स्त्री-पुरुषों को एक समान है।

शिक्षा बहुत उच्च है। सभी स्त्री-पुरुष पढ़े-लिखे हैं। सब रियासतों में विश्वविद्यालय हैं। प्रारम्भिक शिक्षा सर्वत्र निःशुल्क और अनिवार्य है। परन्तु किसी किसी रियासत में विश्वविद्यालय की शिक्षा भी निःशुल्क ही दी जाती है। जहाँ निःशुल्क नहीं भी है, वहाँ सरकार की ओर से छात्रों को बड़ी उदारता से वृत्ति दी जाती है। यहाँ तक कि कोई भी दरिद्र बालक या बालिका अपनी दरिद्रता के कारण शिक्षा से वंचित नहीं रह सकता। वहाँ के नर्सरी स्कूल अर्थात् छोटे बालकों के स्कूल, इतने सुव्यवस्थित हैं कि अमरीका और अन्य देशों के लोग उनको देखने और उनसे व्यवस्था सीखने आते हैं।

शिक्षा अनिवार्य और उच्च होने के कारण यहाँ के श्रमजीवी सुसंगठित हैं। उसके 'ट्रेड यूनियन' बड़े प्रबल हैं। यही कारण है कि उनकी दशा अच्छी है और उनकी बात बहुत मानी जाती है। श्रमजीवियों और मालिकों में झगड़ा होने पर पंचायत-बोर्ड के द्वारा मामला तय हो जाता है। इन बोर्डों के निर्णय को मानना क़ानूनी तौर पर

दोनों पक्षवालों के लिए अनिवार्य है। यह तो नहीं कहा जा स
कि यहाँ स्वामियों और श्रमजीवियों में झगड़ा नहीं है, परन्तु इ
अवश्य कहा जा सकता है कि अन्य देशों की अपेक्षा थोड़े परिश्रम
ही श्रमजीवियों को बड़े स्वत्व मिल गये हैं। अन्य देशों की अ
वहाँ हड़ताल भी कम होती है।

शासन-नीति में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि राव-
में भेद न किया जाय। कर लगाने में और क़ानून बनाने में इस बात
उद्योग किया जाता है कि जहाँ तक हो सके, धनी-निर्धन का अन्तर व
होता जाय। यही कारण है कि बड़े बड़े ज़मींदार और कारखानों
मालिक होने पर भी वहाँ अन्य देशों की नाईं बड़े बड़े करोड़प
नहीं हैं और ऐसे दरिद्र भी कहीं नहीं हैं जो भूखे या नंगे रहें। ल
भग सभी खाते-पीते और सम्पन्न हैं। मैं विशेषकर वहाँ के दरिद्रों
निवासस्थानों में गई थी। वे लोग नगर के उस भाग को 'स्लम्स' कह
हैं। परन्तु जैसे वहाँ के दरिद्रों के घर थे हमारे यहाँ तो अच्छे पैसे
वालों के भी वैसे नहीं होते। स्त्रियों को कोई क़ानूनी रुकावटें नहीं हैं
उनकी और पुरुषों की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं किया जाता
पुरुषों के समान उनको भी वोट देने का अधिकार है। वे राजनीति,
व्यापार या किसी भी व्यवसाय-धंधे को करने के लिए स्वतंत्र हैं।
फिर भी राजनीति में अधिक स्त्रियाँ भाग नहीं लेतीं। समूचे आस्ट्रे-
लिया में, मैं जानती हूँ, दो या तीन स्त्रियों से अधिक व्यवस्थापिका-
सभाओं की सदस्य नहीं हैं। सदस्य न होना तो कुछ ऐसी आश्चर्य
की बात नहीं है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि स्त्रियाँ स्वयं ही

ों का राजनीति में भाग लेना पसन्द नहीं करतीं और बहुधा स्त्रियों
स्त्रियों से वोट भी नहीं मिलते। कारपोरेशन और म्युनिस्पैलिटी
सदस्य भी स्त्रियाँ कम ही होती हैं। सिडनी में एक मेयरेस
निस्पैलिटी की स्त्री-प्रेसिडेंट मुझे अवश्य मिली थी।

राजनीति की ओर अरुचि होते हुए भी स्त्रियों में संगठन और
वस्था पर्याप्त है। स्त्रियों की प्रायः सभी मुख्य मुख्य अन्तर्जातीय
थाओं की शाखायें वहाँ मौजूद हैं। लंदन में मैंने जिस-जिस
न्तर्जातीय संस्था में काम किया था उस-उसमें बहुतों ने मुझे और
े पति को निमन्त्रित किया और बहुत-से स्थानों पर हमसे भारत
ी दशा पर व्याख्यान देने को भी कहा। इस प्रकार लगभग दस-
ारह संस्थाओं के अधीन हमको बोलने का अवसर मिला था।
इयों ने हमसे मिलने और हमें सम्मानित करने के लिए चाय-पार्टियां
ौर खाने भी दिये थे।

उन लोगों ने जिस प्रेम से हमारी आव-भगत और सम्मान किय
ारे हृदयों पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। ऐसा लगता था वि
आस्ट्रेलिया की नीति के पक्षपाती होते हुए भी वहाँ के गोरों के मन
में जाति और वर्ण का भेद बिलकुल नहीं है।

आस्ट्रेलिया में कुछ भारतवासी भी रहते हैं। उनकी संख्य
लगभग २० सहस्र या इससे कुछ कम होगी। काले लोगों का वह
जाना बन्द होने से पहले ही वे लोग वहाँ जा बसे थे। उनमें स
अधिकतर पठान, पंजाबी मुसलमान और सिख हैं। उन्नीसवं
शताब्दी के मध्य में जब वहाँ सोने की खान निकली थी उन दिनों म

बहुत-से पठान और पंजाबी अपने ऊँटों की पलटनें लेकर वहाँ पहुँ गये थे। उस समय जब वहाँ न रेल थी और न सड़कें, उन्होंने मा ढोने में बहुत सहायता दी थी। वे लोग और अन्य बहुत-से व्यापार वर्षों से वहाँ रहते हैं। उनके साथ कोई क़ानूनी अन्तर नहीं रख जाता। उनको वोट देने का अधिकार है। वे चाहे जहाँ सम्पत्ति खरीद सकते हैं, चाहे जहाँ रह सकते हैं, भूमि, मकान ले सकते हैं परन्तु फिर भी वे वहाँ सन्तुष्ट नहीं हैं। बहुत-से भारतीय भा हमें पर्थ में मिले। उन्होंने हमें एक बड़ा प्रीति-भोज भी दिया। इसमे पर्थ के रहनेवाले लगभग सभी भारतवासी आये थे। उस अवसर पर उन्होंने अपने दुःखों का वर्णन किया था।

बात यह है कि वहाँ के रहनेवाले प्रायः सभी भारतवासी अशिक्षित हैं। तीस-तीस और चालीस-चालीस वर्ष उस देश में रहने पर भी उन्होंने वहाँ की भाषा तक अच्छे प्रकार नहीं सीखी है। उनका रहन-सहन भी उस दर्जे का नहीं, जैसा गोरों का है। सभी ने गोरी स्त्रियों से शादियाँ की हैं। भारतीय नारी तो वहाँ एक भी नहीं है। वहाँ का कमाया हुआ रुपया-पैसा भी वे भारत बहुत कम ला सकते हैं। वहाँ से भारत पैसा लाने में इतना टैक्स देना पड़ता है कि पैसा आधा-चौथाई रह जाता है, इसलिए जो लोग वहाँ हैं अब वे वहाँ से वापस भी नहीं आ सकते। उनका कहना यह है कि व्यवहार में उनके साथ बड़ी घृणा की जाती है। जिस रेल के डिब्बे में वे बैठते हैं उसमें कोई गोरा बैठना पसन्द नहीं करता। उनके बाल-बच्चों के साथ स्कूलों में उनके सहपाठी अच्छा व्यवहार

नहीं करते। घरों में उनके अपने बाल-बच्चे उनको आदर की दृष्टि से नहीं देखते। अपने ही घरों में वे अजनबियों के समान रहते हैं। इसलिए उनका जीवन दुःखमय रहता है। परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि जो थोड़े-से लोग वहाँ रहते हैं उनके ये दुःख दूर नहीं हो सकते। उनके बाल-बच्चे गोरों के साथ मिल जाते हैं। उन्हीं से व्याह-शादी कर लेते हैं। थोड़े दिनों के बाद वे लोग यह भूल जायँगे कि वे भारतवासियों की सन्तान हैं। वे गोरों में बिलकुल मिल जायँगे।

आस्ट्रेलिया को बसाने और रहने के योग्य बनाने में वहाँवालों को बहुत कड़ा परिश्रम करना पड़ा है। पानी का अभाव और आवागमन के मार्गों का अभाव ये दो बड़ी भारी कठिनाइयाँ उनके सामने रही हैं। इन्हीं अभाव के कारण अभी तक उस देश का अधिकतर भाग वीरान पड़ा है। केन्द्रीय भाग तो मरुस्थली है और रहने के योग्य नहीं है। परन्तु अन्य बहुत-सी उपजाऊ भूमि अभी ऐसी पड़ी है जो काम में लाई जा सकती है। विशेषकर उत्तरीय और पश्चिमीय भाग अभी तक बहुत उजाड़ पड़ा है। आस्ट्रेलिया में वर्षा कम होती है। नदियाँ बहुत कम हैं और जो हैं भी वे बहुत छोटी हैं। वे बहुधा गर्मी में सूख जाती हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए बहुत-से उपाय किये जा रहे हैं। कई नदियों का जल बाँध बाँधकर बह जाने से रोका जा रहा है। ऐसे कुछ बाँध तैयार हो चुके हैं, कुछ हो रहे हैं। इस उपाय से ज्यों-ज्यों पानी की कमी पूरी होती जायगी, नये नये जंगल साफ होते जायँगे। बहुतेरे स्थानों पर

ट्यूबवेल लगाये गये हैं, जिनमें से पवन-चक्की द्वारा पानी खींचकर ऊपर लाया जाता है।

रेल-सड़कें भी बहुत कुछ तैयार हो गई हैं। २७,००० मील रेल-पथ तैयार है। आस्ट्रेलिया के एक भाग से दूसरे तक बराबर रेल पर ही जा सकते हैं। एरोप्लेनों की भी कई लाइनें खुल गई हैं और लगभग सभी जगह हवाई जहाजों से आ-जा सकते हैं। परन्तु आस्ट्रेलिया इतना बड़ा देश है कि यह सब होते हुए भी पर्याप्त नहीं है और अभी और की आवश्यकता है। जिस प्रकार उन्होंने गत डेढ़ सौ वर्ष में उन्नति की है, उसी भाँति यदि आगे भी करते रहे तो शीघ्र ही वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेंगे। इस देश में यदि उसके आकार के अनुसार कभी जन-वृद्धि हो गई तो यह संसार का एक बहुत बड़ा देश हो जायगा।